वर्ष : 8

संत श्री आसारामजी आश्रम
द्वारा प्रकाशित

ऋषिप्रसाद
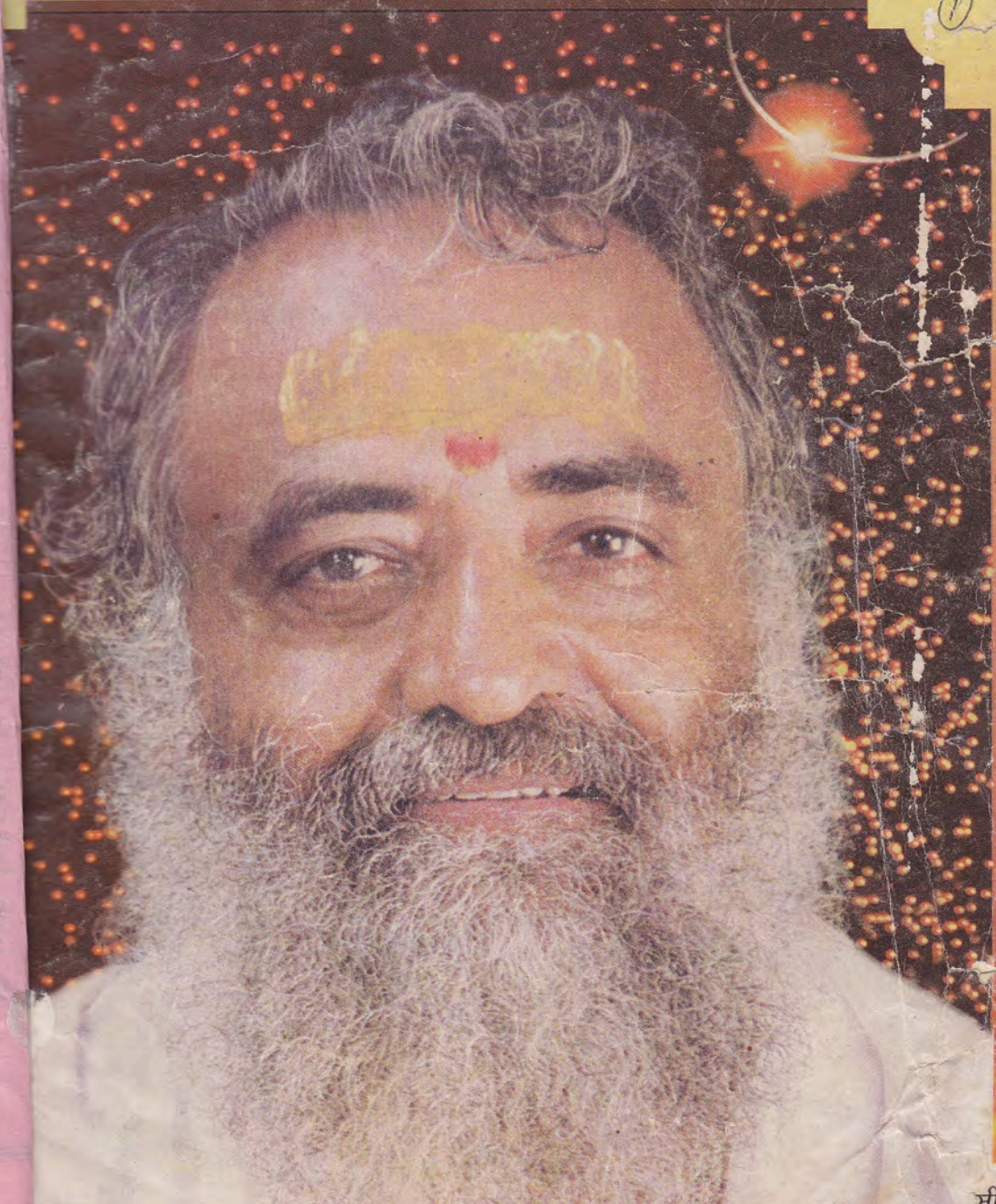
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ८
अंक : ५५
९ जुलाई १९९७

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ८-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती,
अमदावाद-३८० ००५ ने विनय प्रिन्टिंग प्रेस,
मीठाखली, अमदावाद, पारिजात प्रिन्टरी एवं भार्गवी
प्रिन्टर्स, राणीप, अमदावाद में तथा पूर्वी प्रिन्टर्स,
राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया ।

प्रस्तुत है...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें ।

प्रभु ! ऐसा दो वरदान मुझे

प्रभु ! ऐसा दो वरदान मुझे ।
निज आत्मदृष्टि का दान मुझे ।
रहे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य सदा ।
हो निज स्वरूप का भान मुझे ॥

समता, धैर्य, सुविचार रहे ।
दया, करुणा, स्नेह अपार रहे ।
राग-द्वेष न विषय-विकार रहे ।
तेरी कृपादृष्टि हो प्रदान मुझे ॥

झूमे चित्त चकोर प्रभु मस्ती में ।
विश्वास रहे तेरी हस्ती में ।
रहे मनवा सम, हर परिस्थिति में ।
दो सद्‌बुद्धि परिधान मुझे ॥

आशा तृष्णा की चाह न हो ।
गुरु-दर के सिवा कोई राह न हो ।
नश्वर जग की परवाह न हो ।
दो प्रभु चरणों का ध्यान मुझे ॥

ना मोह-माया की व्याधि हो ।
ना अहं की कोई उपाधि हो ।
तुझमें ही सहज समाधि हो ।
दो अचल पद निर्वाण मुझे ॥

हरिनाम से चित्त आबाद रहे ।
ना दुनिया की फरियाद रहे ।
हरि, तू ही तू बस, याद रहे ।
दो निश्चल पथ भगवान मुझे ॥

नहीं काम, क्रोध, मद, लोभ रहे ।
सदा दुराचार से क्षोभ रहे ।
ज्ञान-ध्यान ही आत्मयोग रहे ।
दो चित्त में अमन ईमान मुझे ॥

ना पाप ताप संताप रहे ।
ना अहं हर्ष विषाद रहे ।
तेरी याद से दिल आबाद रहे ।
दो करुणा-कृपा का दान मुझे ॥

मन-मंदिर में तेरी मूरत हो ।
दिल दर्पण में तेरी सूरत हो ।
हो कण-कण में दीदार तेरा ।
ना कर 'स्व' से अनजान मुझे ॥

तेरे चरणों में शीश झुका जाऊँ ।
हर नूर में तुझको पा जाऊँ ।
तेरी चेतना में समा जाऊँ ।
ना रहे कभी अभिमान मुझे ॥

बस, एक अलख की आस रहे ।
सदा गुरुदर्शन की प्यास रहे ।
'साक्षी' तेरा ही अहसास रहे ।
कर पार तू कृपानिधान मुझे ॥

❀

जिन्दगी सजाते चलो...

जिन्दगी सजाते चलो, राम-गुण गाते चलो ।
कदम बढ़ाते चलो, रुको नहीं राह में ॥
रस बरसाते चलो, स्नेह सरसाते चलो ।
जलो नहीं द्वेष के, प्रचण्ड अग्नि-दाह में ॥
भय को भगाते चलो, जय को जगाते चलो ।
बहो नहीं विषयों के, भीषण प्रवाह में ॥
मधुरेश चाहे जितना ही उठो ऊपर को ।
किन्तु गिरो नहीं कभी, परमेश की निगाह में ॥

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

भगवान से कुछ माँगो मत । माँगने से देनेवाले की अपेक्षा तुम्हारी माँगने की वस्तु का महत्त्व बढ़ जाता है । ईश्वर और गुरु माँगी हुई चीजें दे भी देते हैं किन्तु फिर अपना-आपा नहीं दे पाते ।

बलि ने भगवान वामन से कह दिया : ''प्रभु ! आप जो चाहें ले सकते हैं ।''

तब भगवान ने तीन कदम पृथ्वी माँगी और दो कदम में ही इहलोक तथा परलोक दोनों ले लिये । फिर कहा : ''बलि ! अब तीसरा कदम कहाँ रखूँ ?''

बलि : ''प्रभु ! मुझ पर ही रखो ।''

भगवान वामन ने तीसरा कदम बलि के सिर पर रखा और उसको भी ले लिया । बलि बाँध दिये गये वरुणपाश में ।

भगवान से कुछ माँगो मत । माँगने से देनेवाले की अपेक्षा तुम्हारी माँगने की वस्तु का महत्त्व बढ़ जाता है । ईश्वर और गुरु माँगी हुई चीजें दे भी देते हैं किन्तु फिर अपना-आपा नहीं दे पाते ।

''हे हनुमान् ! सेवक का कर्त्तव्य है कि तत्परता और कुशलता से सेवा कर ले । फिर स्वामी ने सेवा का स्वीकार किया या नहीं किया - इस बात का सेवक को दुःख नहीं होना चाहिए ।''

उस समय ब्रह्माजी वहाँ आये और भगवान से बोले :

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वांकुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥

''प्रभो ! जो मनुष्य सच्चे हृदय से, कृपणता छोड़कर आपके चरणों में जल का अर्घ्य देता है और केवल दूर्वादल से भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गति की प्राप्ति होती है, फिर बलि ने तो बड़ी प्रसन्नता से, धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकी का दान कर दिया है । तब यह दुःख का भागी कैसे हो सकता है ?''

(श्रीमद्भागवत : ८, २२.२३)

तब भगवान ने जो बात कही वह बड़ी ऊँची बात है क्योंकि श्रोता बहुत ऊँचा है । ग्वाल-गोपियों के आगे श्रीकृष्ण वही बात करेंगे जो उन्हें समझ में आये । अर्जुन जैसे बुद्धिमान के आगे श्रीकृष्ण गीता की बात करते हैं । जितना श्रोता ऊँचा, उतनी ही वक्ता की ऊँचाई प्रकट होती है । भगवान को तो ब्रह्माजी जैसे श्रोता मिल गये थे, अतः वे बोले :

''हे ब्रह्मन् ! कर्त्ता कर्म का विषय नहीं बन सकता । जीव कर्म का कर्त्ता तो हो सकता है लेकिन कर्म का विषय नहीं बन सकता है । आप कर्म के कर्त्ता तो बन सकते हैं लेकिन कर्त्ता स्वयं कर्म का विषय नहीं बन सकता है ।

कर्त्ता सब कुछ दे सकता है लेकिन अपने आपको कर्त्ता कैसे देगा ? जब लेनेवाला मैं उसे स्वीकार करूँगा तब ही कर्त्ता मुझे पूर्ण रूप से अर्पित होगा । मैं कर्त्ता को ही स्वीकार कर रहा हूँ क्योंकि मैं कर्त्ता को अपना-आपा अर्पण करना चाहता हूँ । बलि कुछ माँग नहीं रहा है, वह दे ही दे रहा है । जब वह सब दे रहा है तो मैं चुप कैसे रहूँ ? मैं अपना-आपा बलि को देना चाहता हूँ इसीलिए मैंने बलि को ले लिया ।''

कर्त्ता कर्म का विषय नहीं हो सकता और कर्त्ता कितना भी लेगा-देगा वह माया में होगा । उसको प्रतीति

होगी कि 'मुझे यह मिला... मैंने यह दिया...' लेकिन देते-देते ऐसा दे दे कि देनेवाला ही न बचे । देनेवाला जब नहीं बचेगा तो लेनेवाला कैसे बचेगा ? **हम न तुम दफ्तर गुम** । यह इतनी ऊँची बात है कि इसी बात को भगवान श्रीराम अपने अति प्रिय, अत्यंत कृपापात्र हनुमानजी से कहते हैं ।

सेतुबंध रामेश्वर की स्थापना के लिए हनुमानजी को काशी से शिवलिंग लाने के लिए भेजा गया ।

हनुमानजी को शिवलिंग लाने में थोड़ी देर हो गयी । इधर रामेश्वर में देर हो रही थी अतः पण्डितों ने, ज्योतिषियों ने कहा : ''स्थापना का मुहूर्त बीता जा रहा है ।''

तब श्रीरामजी ने कहा : ''मुहूर्त बीतने के बाद हनुमानजी आयेंगे तो क्या किया जाए ? आप स्थापना करवा दीजिए ।''

फिर दूसरे शिवलिंग की स्थापना कर दी गयी । थोड़ी-ही देर में हनुमानजी शिवलिंग लेकर पहुँच गये किन्तु देरी हो जाने की वजह से उनके द्वारा लाये गये शिवलिंग की स्थापना नहीं हो सकी, अतः उन्हें दुःख हुआ । दुःख क्यों हुआ ? क्योंकि कर्त्ता अभी मौजूद है... सेवा करनेवाला मौजूद है ।

जब प्रभु श्रीराम को इस बात का पता चला तब वे बोले : ''हे हनुमान् ! सेवक का कर्त्तव्य है कि तत्परता और कुशलता से सेवा कर ले । फिर स्वामी ने सेवा का स्वीकार किया या नहीं किया - इस बात का सेवक को दुःख नहीं होना चाहिए । 'मेरी लाई हुई चीज सेवा में स्वीकारी नहीं गई...' यह सोचकर दुःखी क्यों हो रहे हो ? हे केसरीनंदन ! अष्टसिद्धियाँ और नवनिधियाँ तुम्हारे पास हैं । तुम संयम की साक्षात् मूर्ति हो । तमाम प्रशंसनीय गुण तुममें हैं लेकिन हनुमान् ! तुम्हें संतों की शरण में जाना चाहिए और अपना-आपा पहचानना चाहिए । जब तक तुम अपना-आपा, अपना शुद्ध-बुद्ध स्वरूप नहीं जानोगे, तब तक सुख-दुःख की थप्पड़ें इस मायावी व्यवहार में लगती ही रहेगी । हे अंजनिसुत ! तुम्हें सावधान होकर ब्रह्मवेत्ता संतों का सत्संग सुनना चाहिए ।''

''हे केसरीनंदन ! अष्ट सिद्धियाँ और नवनिधियाँ तुम्हारे पास हैं । तुम संयम की साक्षात् मूर्ति हो । तमाम प्रशंसनीय गुण तुममें हैं लेकिन हनुमान् ! तुम्हें संतों की शरण में जाना चाहिए और अपना-आपा पहचानना चाहिए ।''

अब श्रीराम कैसे कहें कि 'तुम्हें सावधान होकर, मेरी शरण में आकर सत्संग सुनना चाहिए ।' इसलिए एक ज्ञानी दूसरे ज्ञानी के ऊपर यश ढोलते जाते हैं । श्रीराम, श्रीकृष्ण कहेंगे कि 'संतों की शरण में जाओ' और संत कहेंगे कि 'श्रीराम की, श्रीकृष्ण की शरण में जाओ ।' सीधा कैसे कहें ? कभी मौज में आ जाते हैं भगवान तो कह देते हैं कि 'सब कुछ छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ ।' जैसे अर्जुन से कहा :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

श्रीरामजी कहते हैं हनुमानजी से : ''हे पवनपुत्र ! तुम्हें संतों की शरण जाना चाहिए एवं 'कर्म का कर्त्ता कौन है ? कर्म किसमें हो रहे हैं ? सुख-दुःख किसको होता है ? सफलता-विफलता किसमें होती है ?' इस रहस्य को तुम्हें समझना चाहिए । 'सफलता-विफलता का, सुख-दुःख का जिस पर असर होता है, उसका और तुम्हारा आपस में क्या संबंध है ?' यह भी जान लो । हे हनुमान् ! जब तक जीव इस बात को, इस रहस्य को नहीं जानता है, तब तक उसे कितना भी मिल जाये फिर भी माया के थपेड़ों से वह चलित होता रहता है ।

''सूर्य बर्फ का गोला होकर धरती पर आ जाये और धरती तपती हुई आकाश में उड़ने लग जाये फिर भी ब्रह्मवेत्ता के चित्त में कोई विशेष आश्चर्य नहीं होता । अतः हे केसरीनंदन ! तुम्हें ब्रह्मज्ञान पाना चाहिए ।''

हे केसरीनंदन ! जीव का वास्तविक स्वरूप अचल है, अनामय है, निरंजन है, निर्विकार है, सुखस्वरूप है लेकिन जब तक वह अपने अहं को, अपने क्षुद्र जीवत्व को नहीं छोड़ता और पूर्णरूप से ब्रह्मवेत्ताओं की बिनशरती शरणागति स्वीकार नहीं करता तब तक यह जीव कई ऊँचाइयों को छूकर पुनः उतार-चढ़ाव के झोंकों में ही बहता रहता है। जहाँ कोई ऊँचाई और ऊँचा न ले जा सके एवं कोई नीचाई नीचे न गिरा सके - उस अव्ययपद को, उस परमपद को पाने के लिए तुम्हें अवश्य यत्न करना चाहिए।''

''मेरी शरीररूपी नाव ब्रह्मज्ञान के उदधि में इतनी लहराती है कि अगर उसे खूँटी से छोड़ दूँ तो वह किनारा छोड़कर महासागर में लीन हो जाएगी।''

हद हो गयी ! इस ब्रह्मविद्या के लिए तो शास्त्र कहते हैं :

स्नातं तेन सर्वं तीर्थम् ।
दातं तेन सर्वं दानम् ।
कृतो तेन सर्वं यज्ञो ।
येन क्षणं मनः ब्रह्मविचारे स्थिरं कृतम् ॥

'उसने सारे तीर्थों में स्नान कर लिया, उसने सारा दान दे दिया, उसने सारे यज्ञ कर लिए जिसने एक क्षण के लिए भी मन को ब्रह्मविचार में स्थिर कर दिया।'

माँ शारदा थाली सजाकर श्री रामकृष्ण के पास पहुँची। उस समय श्री रामकृष्ण ने मुँह घुमा लिया। माँ शारदा को बात याद आ गयी और धड़ाम् से थाली हाथों से गिर पड़ी।

इस ब्रह्मविद्या की महिमा का जितना भी बयान किया जाये, कम है। यह समझ में आये तो निहाल, थोड़ा समझ में आये तो भी कल्याण और केवल कान को छूकर भी चली जाये तब भी कुछ तो काम करेगी ही।

हनुमानजी कितने निष्काम कर्मयोगी हैं ! शायद इस समय मुझे धरती पर ऐसा देखने को नहीं मिला। मेरी नजर में तो अभी तक हनुमानजी जैसा त्यागी, संयमी, बुद्धिमान और निष्काम कर्मयोगी नहीं आया। होंगे... कहीं और होंगे... उनका अनादर करने का पाप हम अपने सिर पर नहीं लेना चाहेंगे। फिर भी हमारी नजर में तो नहीं दिखा।

इतनी ऊँचाई को छूनेवाले हनुमानजी चाहते तो कह सकते थे अपने स्वामी श्रीराम से कि, 'प्रभु ! पत्नी तो आपकी खो गयी है अतः आप जानो। मैं ब्रह्मचारी... भला, आपकी पत्नी को खोजने से मेरी सेवा कैसे हो सकती है ? दूसरा कोई काम बताइये। यह सेवा तो मुझसे नहीं होगी। मैं ब्रह्मचारी होकर आपकी पत्नी को खोजने जाऊँ तो लोग क्या कहेंगे ? आप तो मुझे कोई मंत्र दे दीजिए ताकि मैं गुफा में बैठकर भजन करूँ...' लेकिन हनुमानजी ने ऐसा नहीं कहा वरन् सेवा में ऐसे लगे कि मैनाक पर्वत की भी इच्छा हो गयी कि 'परिश्रम करके हनुमानजी थक गये होंगे तो तनिक मुझ पर विश्राम कर लें।' और मैनाक पर्वत सागर से निकला और बोला : ''हे पवनपुत्र ! थोड़ा विश्राम कर लीजिए।''

तब हनुमानजी कहते हैं :

राम काजु कीन्हें बिनु ।
मोहि कहाँ बिश्राम ॥

सेवा में कितने तत्पर रहे होंगे हनुमानजी ! ऐसे हनुमानजी से श्रीरामजी कहते हैं : ''हे अंजनि-सुत ! तुम्हें संतों का संग करके, अपने चित्त के साथ का जो संबंध है, उसका विच्छेद करना चाहिये। जिसको सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान आदि का असर होता है उस अपने चित्संवित् से तदाकारता हटाकर जब तुम अपने स्वरूप को जानोगे तब प्रलयकाल का मेघ भी तुम्हें विचलित नहीं कर सकेगा। सूर्य बर्फ का गोला होकर धरती पर आ जाये और धरती तपती हुई आकाश में उड़ने लग जाये फिर भी ब्रह्मवेत्ता के चित्त में कोई विशेष आश्चर्य नहीं होता। अतः हे केसरीनंदन ! तुम्हें ब्रह्मज्ञान पाना चाहिए।''

यह कौन कह रहा है ? श्रीरामचंद्रजी कह

रहे हैं श्री हनुमानजी से । हनुमानजी कितनी ऊँचाई पर हैं उनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते । फिर भी हनुमानजी से भी ब्रह्मज्ञान कितना ऊँचा है - यह श्रीरामजी की वाणी से परिलक्षित होता है, जिसका मात्र अनुमान हम कर सकते हैं । यदि हनुमानजी को हर्ष या शोक हो रहा है तो अभी हनुमानजी सात्त्विक सेवक हैं, महान् हैं लेकिन श्रीराम की निगाह में हनुमानजी अभी भी कृपा के पात्र हैं । हनुमानजी पर कृपा करके श्रीरामजी बोल रहे हैं ।

अगर भगवान और संत कृपा करके आपको कोई फल-मिठाई दे दें - यह कोई बहुत कृपा नहीं है । उनकी परम कृपा न जाने किस रूप में आती है यह तो वे ही जानें ! जो सद्गुरु हैं, ब्रह्मवेत्ता महापुरुष हैं उनसे हानि तो कभी भी नहीं होती है । बहुत मुश्किल है उन्हें समझना...

कैसी होगी करुणा बुद्धत्व को पाये हुए संतों में ! कैसा होगा उनका हृदय !! जब आप उनके अनुभव में स्थिर होंगे तब आपको पता चलेगा कि ब्रह्मज्ञानी के हृदय में कितनी करुणा होती है ! कितनी कृपा होती है उनके हृदय में ! कितनी महानता होती है !

दुनिया को हिला देनेवाले विवेकानंद जैसे शिष्य श्रीरामकृष्ण परमहंस के श्रीचरणों में बैठकर सत्संग सुनते थे और ऐसे रामकृष्ण परमहंस बार-बार रसोईघर में पहुँच जाते और माँ शारदा से पूछते :

''क्या बनाया है ?''

माँ शारदा : ''दाल-चावल, चटनी आदि ।''

रामकृष्ण परमहंस : ''बढ़िया है... जल्दी बनाओ ।''

इन्द्र भी जिनके आगे अपने को दरिद्र मानता है ऐसे महापुरुष रोटी का टुकड़ा माँगकर, भिक्षा माँगकर समाज में घूमते हैं किन्तु उन्हें न पहचानने के कारण मनुष्य कितनी मूर्खता कर बैठता है !

यह क्रम एक-दो दिन से, एक-दो माह से नहीं, वरन् बरसों से चला आ रहा था । आखिर एक दिन माँ शारदा बोल पड़ीं :

''आप इतने बड़े संत हैं और बार-बार सत्संग छोड़कर रसोईघर में भोजन की बातें करने आ जाते हैं !''

तब रामकृष्ण ने बड़े गहरे अनुभव की बात, मार्मिक बात कही : ''मेरी शरीररूपी नाव ब्रह्मज्ञान के उदधि में इतनी लहराती है कि अगर उसे खूँटी से छोड़ दूँ तो वह किनारा छोड़कर महासागर में लीन हो जायेगी, इसीलिए स्वाद की आसक्तिरूप खूँटी से मैंने उसे बाँध रखा है । जिस दिन मेरी यह रुचि चली जायेगी, उस दिन समझ लेना कि यह नाव खूँटी से निकलकर व्यापक सागर में व्याप्त हो जायेगी... फिर तीन दिन से ज्यादा यह नाव नहीं रह पायेगी ।''

ब्रह्मवेत्ता के जीवन में संसारियों की नाईं कोई-न-कोई उन्नीस-बीस बात रहती है तभी उनका शरीर टिकता है । जैसे, नाव तो दरिया में जा सकती है लेकिन फिर भी किनारे के थपेड़े खाती है क्योंकि खूँटी से बंधी है, ऐसे ही ब्रह्मवेत्ता तो सब कुछ छोड़कर ब्रह्म में लीन हो सकते हैं । फिर भी उठना-बैठना, लेना-देना आदि थपेड़े सहते हैं क्योंकि उन्होंने खूँटी लगा रखी है । कहीं-न-कहीं आसक्ति की खूँटी उन्होंने बाँध रखी है । पत्थर तो ऐसे ही सदैव किनारे पर पड़ा रहता है जबकि नाव खूँटी के कारण वहाँ पड़ी रहती है । पत्थर के पड़े रहने में और नाव के पड़े रहने में बहुत अंतर है । पत्थर को उठाकर चलो और जितनी देर उठाकर चलो उतनी देर पत्थर गति करता है और छोड़ दिया तो वहीं जम जायेगा जबकि नाव को अगर किनारे से, खूँटी से छोड़ दिया तो अपने-आप कहीं-की-कहीं पहुँच जायेगी ।

श्री रामकृष्ण के वचन समय पाकर प्रत्यक्ष हुए । एक दिन माँ शारदा थाली सजाकर श्री रामकृष्ण के पास पहुँची । उस समय श्री रामकृष्ण ने मुँह घुमा लिया । माँ शारदा को बात याद आ गयी और धड़ाम्

से थाली हाथों से गिर पड़ी : 'अब खूँटी किनारे से उखड़ गयी है ।' फिर कुछ ही दिनों में श्री रामकृष्ण परमहंस का शरीर नहीं रहा । वे ब्रह्मलीन हो गये ।

...तो ब्रह्मवेत्ता महापुरुष न जाने कौन-सी छोटी-छोटी बात की खूँटी लेकर अपने शरीररूपी नाव को किनारे पर लगाये रखते हैं ताकि बैठनेवाले कोई रह न जाये ।

भगवान बुद्ध जा रहे थे महानिर्वाण के लिए... इतने में एक आदमी दौड़ता-भागता आया और बोला :

''मुझे भंते से कुछ पूछना है ।''

आनंद : ''भंते की नाव किनारा छोड़कर चल पड़ी है । अब आये हो ? इतने दिन तक कहाँ थे ?''

व्यक्ति : ''मैंने चालीस साल से भगवान बुद्ध का नाम सुना था लेकिन एक मन बोलता था- 'जाऊँ, भंते के चरण पकडूँ ।' दूसरा मन कुप्रचार का शिकार होकर सोचता कि- 'क्या जाएँ ऐसे आदमी के पास ?' इस प्रकार कभी निंदकों का कुप्रचार मुझे रोक रखता था तो कभी मेरे सत्कर्मों की पुण्याई मुझे खींचती थी भगवान बुद्ध की ओर... इस प्रकार 'जाऊँ-न जाऊँ... जाऊँ-न जाऊँ...' इसीमें मेरे चालीस साल बीत गये । मैंने बड़ी गलती की ।'' वह भावविभोर होकर चिल्ला पड़ा । महानिर्वाण की ओर जाते भगवान बुद्ध यह सुनकर बोल पड़े :

''अरे ! कौन है आनंद ? आने दे । जाते-जाते कोई ऐसा न कहे कि अरे ! नाव छूट गयी ।''

दो मिनट बात कर ली बुद्ध ने । उसके जीवन पर निगाह डाल दी बुद्ध ने और बांद में महानिर्वाण के लिए गये... कैसी होगी करुणा बुद्धत्व को पाये हुए संतों में ! कैसा होगा उनका हृदय !! जब आप उनके अनुभव में स्थिर होंगे तब आपको पता चलेगा कि ब्रह्मज्ञानी के हृदय में कितनी करुणा होती है ! कितनी कृपा होती है उनके हृदय में ! कितनी महानता होती है !

आपका एक राज्य तो क्या पूरी धरती का राज्य भी ब्रह्मसुख के आगे कोई कीमत नहीं रखता । इन्द्र का राज्य और वैभव भी ब्रह्मसुख के आगे कुछ कीमत नहीं रखते । इन्द्र भी जिनके आगे अपने को दरिद्र मानता है ऐसे महापुरुष रोटी का टुकड़ा माँगकर, भिक्षा माँगकर समाज में घूमते हैं किन्तु उन्हें न पहचानने के कारण मनुष्य कितनी मूर्खता कर बैठता है !

एक बार समर्थ रामदास किसी गन्ने के खेत से गुजरे और थककर वहीं बैठ गये । तब उस खेत का किसान अचानक वहाँ आया और उसने समझा कि यही चोर है जो मेरे गन्ने चुराकर ले जाता है । अत: उसने उठाये गन्ने के सोटे और दे मारे समर्थ की पीठ पर ।

समर्थ वहाँ से चलकर पहुँचे शिवाजी के यहाँ । शिवाजी महाराज अपने गुरुदेव को स्वयं नहलाते थे । जब शिवाजी नहला रहे थे अपने गुरुदेव को तब उनकी पीठ पर ध्यान जाते ही बोल पड़े : ''सोटियों के निशान ! किसने मारा गुरुदेव !''

समर्थ : ''कुछ नहीं हुआ, शिवा ! तुम अपना काम करो ।''

किन्तु शिवाजी तो राजा थे । अत: दूसरे शिष्यों

''तू इसको सजा मत दे । पेड़ को कोई पत्थर मारता है तो पेड़ भी कुछ देता है । इसने मुझे अनजाने में मारा है अत: तू इसको दस एकड़ जमीन दे दे ।'' कैसा गजब का न्याय किया है समर्थ ने !

''मैं तो लोगों को कर्म का फल देने के लिए मनुष्य जन्म में भेजता हूँ किन्तु मेरे संत तो उनके कर्मों को नहीं देखते वरन् अपनी उदारता को देखकर उन पर बरस जाते हैं । माया तो कर्म का फल भुगताने के लिए शरीर देती है जबकि संत उनके कर्मबंधन काटकर मेरे स्वरूप का ही दान कर देते हैं... अपने-आपका ही दान कर देते हैं ।''

से सारी हकीकत जान ली और उस किसान को राज-दरबार में बुलवाया ।

किसान राजदरबार में गया । जाकर देखता है तो शिवाजी महाराज से भी ऊँचे गुरुस्थान पर वे ही पुरुष बैठे हैं जिन्हें उसने चोर सझकर सोटियों से मारा था !

शिवाजी बोले : ''गुरुदेव ! इसी आदमी ने आपकी पिटाई की थी न ? आपने तो नहीं बताया लेकिन मैंने सब जानकारी लेकर आपके समक्ष इसको हाजिर किया है...''

तब समर्थ बोल उठे : ''शिवा ! तू मेरा शिष्य है न ?''

शिवाजी : ''जी, गुरुदेव !''

समर्थ : ''तब तू इसको सजा मत दे । पेड़ को कोई पत्थर मारता है तो पेड़ भी कुछ देता है । इसने मुझे अनजाने में मारा है अत: तू इसको दस एकड़ जमीन दे दे ।''

कैसा गजब का न्याय किया है समर्थ ने ! किन्तु यह भी संतों की करुणा का पूरा बयान नहीं है । वरन् वे तो अपने को घिसते हुए, अपने को खपाते हुए, अपने को जलाते हुए भी हमें चमकाना चाहते हैं । क्या मेरे लीलाशाह बापू को रोटी की कमी थी ? क्या कपड़ों की कमी थी ? क्या वाहवाही की कमी थी ? नहीं, कभी नहीं । फिर भी उन्होंने अपना पूरा जीवन बिता दिया लोककल्याण में । स्वयं श्रीराम ने अपने श्रीमुख से संत-महिमा का बयान किया है और नवधा भक्ति का वर्णन करते समय शबरी से कहा है :

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा ।

'पहली भक्ति है संतों का सत्संग ।'

सातवँ सम मोहि मय जग देखा ।

मोतें संत अधिक करि लेखा ॥

'सातवीं भक्ति है जगत भर को समभाव से मुझमें ओतप्रोत देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना ।'

मैं तो लोगों को कर्म का फल देने के लिए मनुष्य जन्म में भेजता हूँ किन्तु मेरे संत तो उनके कर्मों को नहीं देखते वरन् अपनी उदारता को देखकर उन पर बरस जाते हैं । माया तो कर्म का फल भुगताने के लिए शरीर देती है जबकि संत उनके कर्मबंधन काटकर मेरे स्वरूप का ही दान कर देते हैं... अपने-आपका ही दान कर देते हैं ।

ऐसे संतत्व को पाने के लिए आप भगवान से कोई संसारी उल्लू सीधा मत करवाइये । संत से कोई संसारी स्वार्थ मत सिद्ध करवाइये वरन् उनको निर्दोष नि:स्वार्थ प्रेम कीजिए । वे तो अपना-आपा दे डालने के लिए घूम रहे हैं लेकिन आप उनसे संसारी खिलौने कब तक लेते रहेंगे ? नानकजी ने कहा है :

जो तिद् भावे सो भलिकार ।

तू सदा सलामत निरंकार ॥

'तुझे जो अच्छा लगे उसीमें मेरा भला है ।' यह भाव रखें । 'तू मुझे यह दे दे... वह कर दे... हम यह देने आये हैं... यह लेने आये हैं...' - यह सौदेबाजी नहीं वरन् 'हम आपके चरणों में अपना-आपा ही देने आये हैं...' ऐसा समर्पण हो तो फिर वे स्वयं अपना-आपा तक देने में संकोच नहीं करते ।

फिर भी, जो जिस भाव से भगवान और संत को नवाजता है उसके उसी भाव की पूर्ति होती है देर-सबेर ।

श्रीरामचरितमानस में आया है :

राम भगत जग चारि प्रकारा ।

सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥

'हम आपके चरणों में अपना-आपा ही देने आये हैं...' ऐसा समर्पण हो तो फिर वे स्वयं अपना-आपा तक देने में संकोच नहीं करते ।

ज्ञानी जब महानिर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं तब तो वे व्याप्त ब्रह्म होते ही हैं परंतु सशरीर होते हैं तब भी वे व्याप्त ब्रह्म से अभिन्न होते हैं ।

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा ।
ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ॥

'जगत में चार प्रकार के (अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी) रामभक्त हैं और चारों ही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं । चारों ही चतुर भक्तों को नाम का ही आधार है । इनमें से ज्ञानी भक्त प्रभु को विशेष रूप से प्रिय है ।' (श्रीरामचरित- बालकांड : २१, ३-४)

दुःख, पीड़ा और मुसीबत आये तब आर्त भाव से जो भगवान और गुरु को पुकारते हैं, उन्हें तुरंत लाभ होता है । शरणागति भाव से तुरंत लाभ होता है । ऐसे भक्त आर्त कहे जाते हैं । कोई अर्थार्थी होते हैं अर्थात् धन अथवा किसी संसारी स्वार्थ की सिद्धि के लिए भजते हैं । फिर भी भगवान ने उन्हें उदार कहा है क्योंकि देर-सबेर वे भगवान को ही पा लेते हैं ।

भगवान श्रीराम के गुरु वशिष्ठजी महाराज भी कहते हैं : "जगत पर ज्ञानवानों का बड़ा उपकार है अतः आदरपूर्वक उनकी सेवा करनी चाहिए । वे संसार-सागर से तारनेवाले मल्लाह हैं ।"

"आपने जो दिया है वह शाश्वत् है लेकिन मेरे पास देने के लिए शाश्वत् तो है नहीं । किन्तु मैं निगुरा, कृतघ्न न रहूँ इसलिए आप मेरी इन तुच्छ चीजों का स्वीकार करें ।"

समझो, धन के लिए साधक ने भगवान का भजन किया और धन मिल गया तो भगवान में श्रद्धा तो बढ़ ही जायेगी । भगवान में श्रद्धा बढ़ेगी तो देर-सबेर भगवान के वचन भी उसे लगेंगे । आगे जाकर वह अपना-आपा भी अर्पण कर देगा इसलिए वह उदार है ।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

'ये सभी उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगानेवाले होने से उत्तम हैं । परंतु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है- ऐसा मेरा मत है ।' (गीता : ७.१८)

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि आर्त और अर्थार्थी उदार कैसे ? **उदाराः सर्व एवैते...** भगवान ऐसी गलती कैसे कर रहे हैं ? भगवान गलती नहीं कर रहे हैं भाई ! भगवान सही कह रहे हैं ।' कोई कहे कि, 'प्रभु ! वह तो अपना दुःख मिटाने के लिए आपको याद कर रहा है' तब भगवान कहेंगे कि, 'दुःख मिटाने के लिए ही सही, मेरी शरण तो आ रहा है न ! दवाई या छल-कपट की शरण में तो नहीं जा रहा है ! अतः वह उदार है ।'

• ध्रुव अर्थार्थी था । उसे जगत की चीज चाहिए थी । किन्तु इस बहाने भी उसने भगवान की शरण ली तो देर-सबेर ध्रुव ने अपना-आपा भी भगवान को अर्पण कर दिया, वह उदार हो गया ।

दुःख मिटाने या संसार की कोई चीज पाने के लिए भगवान को भजना- यह छोटी बात तो है लेकिन इस छोटी बात का भी देर-सबेर बड़ा फल मिलनेवाला है- ऐसा जानते हैं इसलिए छोटी नहीं मानते हैं और कहते हैं कि 'ये सब उदार हैं ।'

उदाराः सर्व एवैते...

कुछ भक्त ऐसे भी होते हैं जो भगवान को जानने के लिए भजन करते हैं । उन्हें जिज्ञासु कहते हैं । इन तीनों भक्तों से निराले होते हैं चौथे प्रकार के भक्त । वे हैं प्रेमी भक्त । उन्हें कुछ सांसारिक वस्तु पाना नहीं है, कोई दुःख मिटाना नहीं है और भगवान को पाने के लिए भी भगवान का भजन नहीं करना क्योंकि भगवान का तो उन्हें अनुभव हो ही गया है फिर भी भगवान की चर्चा करते-सुनते हैं । ऐसे ज्ञानी भगवद्-स्वरूप होते हैं ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं अर्जुन से कि, 'ऐसे ज्ञानी तो मेरा ही स्वरूप हैं । अगर ऐसे ज्ञानी में और मुझमें तू भेद करना चाहता है कि क्या फर्क है तो ज्ञानी मेरा आत्मा है और मैं उसका शरीर । अर्जुन ! हम दोनों में क्या भेद हो सकता है ? जैसे कमरे में दो दीये जला दो तो किस दीये की

कौन-सी रोशनी है यह तुम कैसे अलग कर सकते हो ? दो तालाब लबालब भर गये हों और बीच की दीवार टूट गयी हो तो किस तालाब का कौन-सा पानी है यह कैसे अलग कर सकते हो ? ऐसी ही बात इधर है-

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदे विभागिनो ।
व्योमवत् व्याप्तदेहाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ऐसे गुरु को हम नमन करते हैं । जैसे, घड़े का आकाश और महाकाश । घड़ा फूट गया है तो घड़े का आकाश कौन-सा और महाकाश कौन-सा यह कैसे बताओगे ? मान लो घड़ा फूटा नहीं है, घड़ा मौजूद है लेकिन घड़े को पता चल गया है कि 'मैं घड़ा नहीं हूँ बल्कि आकाश हूँ' तो वह आकाश है ही । ऐसे ही ज्ञानी जब महानिर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं तब तो वे व्याप्त ब्रह्म होते ही हैं परंतु सशरीर होते हैं तब भी वे व्याप्त ब्रह्म से अभिन्न होते हैं । कबीरजी ने कहा है :

जल में कुंभ कुंभ में जल
बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुंभ जल जल ही समाना
यह अचरज है ज्ञानी ॥

दूसरी जगह अपना अनुभव कहते हुए संत कबीरजी कहते हैं :

''दरिया का थाह लेने गई नमक की पुतली... अब नमक की पुतली का जो हाल सागर में होता है वही हाल ज्ञानी के 'मैं' का होता है ।''

श्रीराम कहते हैं पवनसुत से :

''हे हनुमान् ! तुम ज्ञानवानों के सान्निध्य में जाओ और अपने 'मैं' को जरा ज्ञानवानों के दरिया में समाने दो । फिर तुम्हें सफलता का हर्ष नहीं होगा और विफलता का शोक नहीं होगा ।''

अयोध्या में हाहाकार मच गया : 'सेवक राम कितने महान् और उनके लोभी गुरु कैसे ? लगता है उनकी बुद्धि सठिया गयी है...'

गुरु यदि कभी शिष्य को बाँधते भी हैं तो शिष्य को सारे बँधनों से छुड़ाने के लिए बाँधते हैं कि 'ले, यह गुरुमंत्र है और दस माला के वचन में तुझे बाँधता हूँ ।' यह बंधन तो है लेकिन गुरुदेव का बंधन है । सारे बंधनों से छुड़ाने के लिए बंधन है ।

भगवान श्रीराम के गुरु वशिष्ठजी महाराज भी कहते हैं : ''जगत पर ज्ञानवानों का बड़ा उपकार है अतः आदरपूर्वक उनकी सेवा करनी चाहिए । वे संसार-सागर से तारनेवाले मल्लाह हैं ।''

क्या-क्या कहें ? ब्रह्मवेत्ताओं की महिमा तो लाबयान है !

ऐसे महाराज वशिष्ठजी से राजा दशरथ कहते हैं : ''हे गुरुदेव ! हे करुणानिधे ! मैं और मेरा परिवार और यह राजपाट सब मैं आपके श्रीचरणों में अर्पण करता हूँ । आप कृपा करके स्वीकार करना, गुरुवर ! आपने जो दिया है वह शाश्वत् है लेकिन मेरे पास देने के लिए शाश्वत् तो है नहीं । किन्तु मैं निगुरा कृतघ्न न रहूँ इसलिए आप मेरी ये तुच्छ चीजों का स्वीकार करें । शरीर हाड़-मांस का है, मन चंचल है और धन-वैभव मिथ्या व नाशवान है- ये मिथ्या व नाशवान आपको अर्पण कर रहा हूँ । आप मुझे शाश्वत् दे रहे हैं, सत्य दे रहे हैं और मैं मिथ्या दे रहा हूँ । गुरुदेव ! आप नाराज मत होना । मैं यह ठगने की सौदेबाजी कर रहा हूँ लेकिन आप मेरा यह सौदा स्वीकार करने की कृपा करना । आप अमिट दे रहे हैं और मैं यह मिटनेवाला अर्पण कर रहा हूँ ।''

राजा दशरथ गुरु वशिष्ठजी के श्रीचरणों में प्रणाम करते हुए कहते हैं : ''गुरुवर ! ये चारों पुत्र- राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को मैं आपके चरणों में अर्पित करता हूँ । मैं अपने आपको परिवारसहित अर्पित करता हूँ और मेरा अयोध्या का राज्य भी मैंने आपको दिया । आप स्वीकार करने की कृपा करें । आपने जो मुझे दिया है, उसकी जगह यह सब देकर भी मैंने आपका पूरा बदला नहीं चुकाया है...''

वशिष्ठजी बोले : ''ब्राह्मण क्या जाने राज्य करना ? राज्य तो क्षत्रिय ही करे और इन राम-लक्ष्मणादि को एवं तुमको तो हमने पहले से ही अपना मान रखा है । अत: मेरा ही समझकर राज्य करो लेकिन कर्त्तापने के बोझ से तुम निवृत्त हो जाया करो ।''

कैसे हैं महाराज वशिष्ठ और कैसे हैं राजा दशरथ !

राज्य के द्वारा वशिष्ठजी के आश्रम की सेवा होती थी । अयोध्या में श्रीराम पधारे । समय पाकर अश्वमेध यज्ञ संपन्न होने जा रहा था । यज्ञ की पूर्णाहुति और श्रीराम का जन्मदिवस - दोनों एक साथ थे । उस दिन श्रीराम ने अपनी दोनों भुजाएँ उठाकर कहा :

''आज के दिन कोई भी महर्षि इस सेवक राम को सेवा का अवसर दे और मुँहमाँगा दान ले ले । अयोध्या का पूरा राज्य और कौस्तुभ मणि आदि अष्ट चीजें माँग ले, यहाँ तक कि कोई सीताजी को माँग ले तो भी मैं देने को तैयार हूँ ।''

''हर दिन कितनी बार न्यौछावर करूँ अपने-आपको सद्‌गुरु पर जिन्होंने एक पल में ही मुझे मनुष्य से परम देवता बना दिया और तदाकार हो गया मैं ।''

यह सुनकर वशिष्ठजी महाराज उठ खड़े हुए और बोले : ''हे राम ! हम सीताजी को लेने के लिए तैयार हैं । आप सीताजी मुझे अर्पण कर दें ।''

वशिष्ठजी महाराज के इन वचनों को सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया । श्रीराम ने सेवकों को संकेत किया कि जाकर सीताजी से कहें कि सजधजकर तैयार होकर आ जायें ।

कथा कहती है कि श्रीराम ने सीताजी को दान में देने का संकल्प कर दिया । सीताजी के आगमन पर वशिष्ठजी बोले : ''हे सीता ! बैठ जाओ मेरे पास ।''

अयोध्या में हाहाकार मच गया : 'सेवक राम कितने महान् और उनके लोभी गुरु कैसे ? लगता है उनकी बुद्धि सठिया गयी है...'

लेकिन श्रीराम के चित्त में कोई क्षोभ नहीं है और वशिष्ठजी को कोई परवाह नहीं है ।

श्रीराम पुन: बोले : ''गुरुदेव ! और कोई आज्ञा ?''

वशिष्ठजी : ''राम ! तुमने दान तो दे दिया लेकिन अभी दक्षिणा देना बाकी है ।''

श्रीराम : ''गुरुदेव ! दक्षिणा में आप जो आज्ञा करें ।''

वशिष्ठजी : ''दक्षिणा के रूप में मुझे एक वचन दे दो, राम ! कि आज के बाद अयोध्या, सीता और कौस्तुभ मणि आदि अष्ट चीजें किसीको दान में देने की घोषणा नहीं करोगे ।''

श्रीराम : ''जैसी आपकी आज्ञा, गुरुवर !''

वशिष्ठजी : ''राम ! तुमने सीता को तो मुझे अर्पित कर दिया है और दान में दी गयी चीज़ तुम वापस नहीं लोगे क्योंकि क्षत्रिय हो । अत: सीताजी को तौलकर, उसका आठ गुना सोना मुझे दे दो और मैं सीता तुम्हें वापस देता हूँ ।''

श्रीरामजी ने आठ गुना सोना तौलकर दे दिया । वशिष्ठजी ने अपनी कन्यारूप सीता श्रीराम को पुन: अर्पित कर दी और उस संपत्ति से यज्ञ-यागादि किया ।

वशिष्ठजी के लिए जिन्होंने हाहाकार मचाया, निन्दाएँ कीं वे न जाने किस नरक में पचते होंगे मुझे पता नहीं है लेकिन श्रीराम का शीश तो वशिष्ठजी के चरणों में अंत तक झुकता ही रहा । कैसी है श्रीराम की श्रद्धा और कैसी है वशिष्ठजी की वह उदार वृत्ति कि दक्षिणा के रूप में वचन लेकर शिष्य को बाँधकर रख दिया !

गुरु यदि कभी शिष्य को बाँधते भी हैं तो शिष्य को सारे बँधनों से छुड़ाने के लिए बाँधते हैं कि 'ले, यह गुरुमंत्र है और दस माला के वचन में तुझे बाँधता हूँ ।' यह बंधन तो है लेकिन गुरुदेव का बंधन है । सारे बंधनों से छुड़ाने के लिए बंधन है ।

(शेष पृष्ठ १५ पर)

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

माँ पार्वती व जीवन्मुक्त संत

पूरा प्रभु आराधिया पूरा जा का नाँव ।
पूरे को ही पाइया पूरे के गुण गाँव ॥

ऐसे पूरे प्रभु की आराधना करनेवाले एक जीवन्मुक्त संत बैठे हुए थे । पार्वतीजी एवं शिवजी विचरण करते हुए उधर से निकले, तब पार्वतीजी ने शिवजी से कहा :

''देखिये तो सही, आपका यह भक्त ! घर-बार, राज-पाट छोड़कर साधु हुआ है । अब चिता की अग्नि में बाटी सेंक रहा है । इसको कुछ दे दीजिए ।''

शिवजी : ''इनको मैं क्या दूँ... इन्होंने तो ऐसा पाया है कि वे दूसरों को जो चाहे वह दे सकते हैं ।''

पार्वतीजी : ''प्रभु ! क्यों ऐसा कहते हैं ? बेचारे दुःखी हैं, चलिये ।''

शिवजी : ''तुम कहती हो तो चलो ।''

दोनों गये उन महापुरुष के पास और शिवजी बोले :

''भिक्षां देहि ।''

''मेरी बाटी वापस कर दो । अभी मैं प्रेम से निश्चिंत बैठा हूँ । राज्य की झंझट कहाँ संभालूँ ? आपकी सेवा का फल मुक्ति होना चाहिए कि राज्य की झंझट ?''

''आप दे-देकर भी क्या देंगी ? या तो अनुकूल वस्तुएँ देंगी या प्रतिकूल वस्तुएँ देंगी लेकिन देंगी दोनों इस नश्वर शरीर को ही । आपका श्राप प्रकृति के इस बदलनेवाले शरीर को लग सकता है । मुझ आत्मा तक उसकी पहुँच नहीं है ।''

महापुरुष ने जो दो बाटी सेंक रखी थीं, वे उठाकर पीछे देखे बिना ही दे दी । तब शिवजी ने कहा : ''अरे ! जरा पीछे देखो तो सही, किसको भिक्षा दे रहे हो ?''

उन संत पुरुष ने पीछे देखा और बोले : ''अच्छा ! भोलेनाथ आप आये हैं ?''

शिवजी : ''कुछ माँग लो ।''

महापुरुष : ''क्या माँगू ?''

शिवजी : ''मैं तुम्हें इस धरती का राजा बनाता हूँ ।''

महापुरुष : ''मेरी बाटी वापस दे दो । अभी मैं प्रेम से निश्चिन्त बैठा हूँ, फिर राज्य की झंझट कहाँ संभालूँ ? आपकी सेवा का फल मुक्ति होना चाहिए कि राज्य की झंझट ?''

शिवजी पार्वतीजी की ओर देखकर मंद-मंद मुस्कुराये । दोनों वहाँ से अन्तर्धान हो गये ।

समय पाकर माता पार्वतीजी अकेली वहाँ आयीं । उस समय वे महापुरुष गुदड़ी सी रहे थे । माँ पार्वती ने कहा : ''बाबा ! कुछ माँग लो ।''

महापुरुष : ''माँ ! कुछ देना ही चाहती हो तो जरा यह गुदड़ी सी दीजिए ।''

पार्वतीजी : ''गुदड़ी क्या गादी-तकिये से सजा-सजाया भवन दे दूँ ।''

महापुरुष : ''माताजी ! छोड़िये ये सब झंझट ।''

माताजी चली गयी । कुछ समय बीता । पुनः माता पार्वतीजी पधारीं । उस समय वे महापुरुष टाँग पर टाँग चढ़ाकर आकाश की ओर निहारते हुए ब्रह्मानंद की मस्ती में बैठे हुए थे । पार्वतीजी आयीं तो वे न खड़े हुए, न कुछ बोले । तब पार्वतीजी ने कहा : ''क्या बैल की तरह

बैठे हो ! जाओ, बैल बन जाओ ।''

समय पाकर वे महापुरुष बैल के रूप में प्रगट हुए । पार्वतीजी ने पूछा : ''क्यों महाराज ! कैसे हैं ?''

बैलरूपी महापुरुष बोले : ''माताजी ! आपकी बड़ी कृपा है । मनुष्य रूप में तो जरा मल-मूत्र त्याग के लिए स्थान का विचार करना पड़ता था । अब तो चलते-चलते भी कर लिया तो कोई हर्ज नहीं है । पहले तो भोजन बनाकर खाना पड़ता था किन्तु अब तो भूख लगी, चारा तैयार ।''

माताजी को हुआ कि इनको तो कोई असर ही नहीं होता । ये तो ऊँट जैसे हैं । अत: बोलीं : ''ऊँट की नाईं गर्दन ऊँची किये बैठे हो, जाओ ऊँट बनो ।''

कहानी कहती है कि समय पाकर वे ऊँट बने । कुछ समय बीतने के बाद माताजी ने पूछा : ''क्यों... क्या हाल है ?''

ऊँटरूपी महापुरुष : ''माँ ! बैल को तो हरा या सूखा घास चाहिए । कभी मिले न भी मिले । किन्तु ऊँट बनाकर तो आपने एकदम आराम दे दिया । जब भूख लगे तो गर्दन ऊँची करके पेड़ों से भोजन मिल जाता है । माताजी ! आप दे-देकर भी क्या देंगी ? या तो अनुकूल वस्तुएँ या प्रतिकूल वस्तुएँ देंगी लेकिन दोनों देंगी इस नश्वर शरीर को ही । आप चाहे बैल बनायें चाहे ऊँट, शरीर है प्रकृति का । आपका श्राप प्रकृति के इस बदलनेवाले शरीर को लग सकता है । मुझ आत्मा तक उसकी पहुँच नहीं । माताजी ! अब आपको कुछ चाहिए तो आप ही कुछ माँग लीजिए ।''

कैसे हैं ब्रह्मवेत्ता संत !

माता पार्वतीजी ने कहा : ''यदि आप मुझ पर प्रसन्न ही हैं तो मुझे एक वरदान दे दीजिए कि आप जैसे जीवन्मुक्त पुरुष मेरे यहाँ बालक रूप में अवतरें ।''

उन संत महापुरुष ने स्वीकार कर ली बात और वे ही स्वामी कार्तिकेय होकर माता पार्वती के घर अवतरित हुए ।

❀

औलिया की जूती

निजामुद्दीन औलिया एक सूफी फकीर एवं बाबा फरीद के प्रेमभाजन थे । एक बार निजामुद्दीन औलिया के पास एक गृहस्थ मुसलमान आया और बोला :

''बाबा ! मुझे अपनी लड़की के हाथ रंगने हैं । हो जाये कुछ रहमत...''

औलिया : ''आज कोई धनवान नहीं दिखता । कल आना ।''

दूसरे दिन भी वह गृहस्थ आया किन्तु उस दिन औलिया का कोई सेठ भक्त नहीं आया । पुन: निजामुद्दीन औलिया ने कहा : ''कल आना ।'' इस प्रकार 'कल... कल...' करते कुछ दिन बीत गये किन्तु कोई सेठ आया नहीं ।

तब वह गृहस्थ बोला :

''बाबा ! मुझ गरीब का भाग्य भी गरीब है । अब आपसे जो रहमत हो सके, वही दे दीजिए ।''

निजामुद्दीन औलिया : ''भाई ! मेरे पास तो इस वक्त मेरी जूती पड़ी है । वही ले जाओ ।''

औलिया की जूती लेकर वह गृहस्थ निकल पड़ा और सोचने लगा कि, 'इस जूती के तो दो-चार आने मिल जायेंगे । चलो, उसी पैसों से गुड़ लेकर खा लेंगे ।' इस प्रकार के विचार करते-करते वह जा रहा था ।

इधर अमीर खुसरो अपने वजीरपद से इस्तीफा देकर चालीस ऊँटों पर अपने पूरे जीवन की कमाई लदवाकर औलिया के चरणों में जीवन धन्य बनाने के

> *''मेरे औलिया की जूती का मूल्य चुकाने की सामर्थ्य तो मुझमें नहीं है । फिर भी मैं मुफ्त में लेना भी नहीं चाहूँगा । मेरे जीवन की सारी कमाई तुम्हें देता हूँ । यदि दे सको तो मेरे शहंशाह की यह जूती मुझे दे दो ।''*

लिए आ रहा था । इस गृहस्थ के पास आने पर उस प्यारे शिष्य अमीर खुसरो को अपने गुरुदेव निजामुद्दीन की बू आयी तो वह सोचने लगा कि मानो-न-मानो, मेरे औलिया की खुशबू इसी आनेवाले आदमी की ओर से आ रही है । अमीर खुसरो ने फिर गौर किया । जब वह आदमी पीछे गया तो खुशबू पीछे से आने लगी । उसे जाते देखकर अमीर खुसरो ने आवाज लगायी : ''ठहरो भाई ! मेरे औलिया के यहाँ से तुम क्या लिये जा रहे हो ? मेरे औलिया का ओज दिखाई दे रहा है। क्या है तुम्हारे पास ?''

उस आदमी ने सारी बात अमीर खुसरो को बता दी और कहा : ''उन्होंने मुझे अपनी यह जूती दी है ।''

''जिसे मैं दो-चार आने की जूती मान रहा था, उसके लिए अमीर खुसरो अपने पूरे जीवन की कमाई देने पर भी सौदा सस्ता मान रहा है !''

खुसरो : ''अच्छा ! बताओ, तुम कितने में इसे दोगे ?''

व्यक्ति : ''आप जो मूल्य लगायें ।''

अमीर खुसरो : ''मेरे औलिया की जूती का मूल्य चुकाने की सामर्थ्य तो मुझमें नहीं है । फिर भी मैं मुफ्त में लेना भी नहीं चाहूँगा । मेरे जीवन की सारी कमाई चालीस ऊँटों पर लदी है । इनमें से एक ऊँट, जिस पर सीधा-सामान है, केवल वही मैं रखता हूँ बाकी के उनतालीस ऊँट तुम्हें देता हूँ । यदि दे सको तो मेरे शहंशाह की यह जूती मुझे दे दो ।''

वह व्यक्ति तो हैरान हो गया कि जिसे मैं दो-चार आने की जूती मान रहा था, उसके लिए अमीर खुसरो अपने पूरे जीवन की कमाई देने पर भी सौदा सस्ता मान रहा है ! उसने औलिया की जूती अमीर खुसरो को दे दी ।

अमीर खुसरो पहुँचा गुरु के द्वार पर और प्रणाम किया अपने औलिया को । एक रेशमी रूमाल से ढँककर सौगात पेश की औलिया के कदमों में ।

निजामुद्दीन : ''क्या लाये हो ?''

अमीर खुसरो : ''आपकी दी हुई चीज आपके चरणों में लाया हूँ ।''

निजामुद्दीन : ''आखिर लाये क्या हो ? कौन से मेवे-मिठाइयाँ हैं ?''

अमीर खुसरो : ''गुरुदेव ! मेरे औलिया ! मेवे-मिठाइयों से भी ज्यादा कीमती चीज है ।''

निजामुद्दीन : ''क्या है ?''

अमीर खुसरो : ''औलिया ! मेरे सारे जीवन की कमाई का सार है ।''

निजामुद्दीन : ''आखिर है क्या ?''

अमीर खुसरो : ''मेरे मालिक ! मेरे आका ! मैं क्या बोलूँ ? मरे लिये तो मेरे पूरे जीवन की कमाई है ।''

निजामुद्दीन : ''अच्छा ! खोलो तो सही !''

धीरे-से रेशम का रूमाल हटाया अमीर खुसरो ने । देखते ही चौंक पड़े निजामुद्दीन औलिया और बोले : ''अरे ! यह तो मेरी जूती ! थोड़ी देर पहले ही एक गरीब को दी थी । क्या तुने छीन ली उससे ? ''

अमीर खुसरो : ''मेरे रब ! मैंने छीनी नहीं है ।''

निजामुद्दीन : ''तो क्या खरीदी है ?''

अमीर खुसरो : ''इस बंदे में क्या ताकत कि आपकी जूती खरीद सके ?''

निजामुद्दीन : ''फिर कैसे लाया है ?''

अमीर खुसरो : ''मेरे औलिया ! मेरे जीवन भर की कमाई से लदे जो चालीस ऊँट थे उनमें से एक सीधे-सामान, बोरी-बिस्तरवाले ऊँट को छोड़कर बाकी के उनतालीस ऊँट देकर इसे लाया हूँ ।''

तब निजामुद्दीन बोले : ''फिर भी सौदा सस्ता है ।''

❀

संतों का समय व्यर्थ न करो

चाणोद करनाली में श्री रंगअवधूत महाराज नर्मदा के किनारे बैठकर नर्मद की शांत लहरों को निहार रहे थे । वहाँ एक अधिकारी ने देखा कि जिनका काफी

नाम सुना है, वे ही श्री रंगअवधूत महाराज बैठे हुए हैं। अतः वह उनके पास जाकर प्रणाम करके बोला :

''बाबाजी ! बाबाजी ! ४२ वाँ साल चल रहा है... अभी तक घर में झूला नहीं बँधा, संतान नहीं हुई ।''

श्री रंगअवधूतजी बोले : ''यहाँ भी संतान की बात करता है ? जा अब ।''

अधिकारी बोला : ''किन्तु बाबाजी ! अभी तक संतान नहीं हुई... मुझे संतान होगी कि नहीं ?''

''हाँ ! जा अब यहाँ से ।''

''बाबाजी ! बेटा होगा क्या मुझे ?''

''हाँ बाबा, हाँ। जा अब यहाँ से ।''

''बाबाजी ! क्या सचमुच मुझे बेटा होगा ?''

''अरे ! तुझे कहा न ! जा यहाँ से ।''

''किन्तु बाबाजी ! एक बार फिर से कह दीजिए न कि बेटा होगा ।''

''जा, साले ! अब कभी नहीं होगा ।''

जो संत दिव्य सात्त्विक भाव में होते हैं उनका संकेत भी काफी होता है । अतः बार-बार एक ही बात पूछकर ऐसे निजानंद की मस्ती में मस्त रहनेवाले संतों का समय नष्ट करना मूर्खता है । संतों के पास श्रद्धा-भक्ति से बैठकर सत्संग-श्रवण करना और उसका मनन-चिंतन करना तो बढ़िया है किन्तु संसार की नश्वर वस्तुओं के लिए बार-बार उनका समय लेना अपराध है ।

कोई जाय संत के पास और कहे :

''महाराज ! इसे यह बीमारी है... डाक्टरों ने ऐसा कहा है ।''

संत : ''अच्छा... जाओ, देखो कोई इलाज करो ।''

अब वह इलाज करे न करे फिर भी उसे स्वतः फायदा होने लगेगा । केवल महापुरुष के कानों में बात पहुँचायी तो भी फायदा हो जाता है । सत्त्वगुण में जागे हुए महापुरुष का संकेत भी काफी होता है। सत्त्वगुण में जो महापुरुष हैं वे तो नजरों-नजरों में ही दे देते हैं । उनके आगे माँगना नहीं पड़ता । अतः एक ही बात बार-बार पूछकर उनका समय खराब करना माने अपना भाग्य ही खराब करना है ।

सत्त्वगुण में जागे हुए महापुरुष का संकेत भी काफी होता है । सत्त्वगुण में जो महापुरुष हैं वे तो नजरों-नजरों में ही दे देते हैं । उनके आगे माँगना नहीं पड़ता । अतः एक ही बात बार-बार पूछकर उनका समय खराब करना माने अपना भाग्य ही खराब करना है ।

(पृष्ठ ११ का शेष)

जब सारे बंधन छूट जाते हैं तब गुरु यह बंधन भी छुड़वा देते हैं । अन्य दर्शनों से छुड़ाने के लिए गुरुदेव कहते हैं कि 'भाई ! भगवान और गुरु के नित्य दर्शन कर ।' लेकिन जब और दर्शनों का आकर्षण मिट गया तो गुरु कहते हैं कि 'तू और मैं एक हैं । अब कहाँ दर्शन ? जहाँ बैठा है वहीं तू मैं एक हैं...'

शिष्य ने अर्पित किया अपना आपा तो गुरु भी कहाँ देर करते हैं ? वरन् वे तो नश्वर की जगह शाश्वत् देकर, मिटनेवाले की जगह अमिट देकर और अपूर्ण की जगह पर पूर्णता का बोध कराकर शिष्य को भी पूर्ण बना देते हैं । ऐसे ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं की तुलना किनसे की जाए ?

तस्य तुलना केन जायते ?

तभी तो कबीरजी ने कहा है :

बलिहारी गुर आपणैं द्यौंहाड़ी कै बार ।
जिनि मानिष तैं देवता करत न लागी बार ॥

'हर दिन कितनी बार न्यौछावर करूँ अपने-आपको सद्गुरु पर जिन्होंने एक पल में ही मुझे मनुष्य से परम देवता बना दिया और तदाकार हो गया मैं ।'

हे मेरे गुरुवर ! हे करुणानिधान ! आपके श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम...

हस्तामलक स्तोत्र

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

दक्षिण भारत के श्रीबली नामक गाँव में प्रभाकर नाम के एक विद्वान ब्राह्मण रहते थे । उनका एक पागल-सा लड़का था । वह लड़का बचपन से ही सांसारिक कार्यों के प्रति उदासीन वृत्ति रखता था । उसका व्यवहार एक गूंगे और बहरे बालक के समान था । एक बार जब शंकराचार्य अपने शिष्योंसहित इस गाँव में पधारे तब प्रभाकर अपने पागल जैसे दिखनेवाले पुत्र को लेकर आचार्य भगवान शंकर के समीप गये । उन्होंने आचार्य को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किये । श्री शंकराचार्य ने उन दोनों को उठाया और प्रभाकर से प्रश्न किया । उसके जवाब में प्रभाकर ने कहा :

> *''हे स्वामिन् ! मेरा यह पुत्र बचपन से ही गूंगा और तमाम प्रकार के व्यवहार से उदासीन है । इसकी यह मूढ़ दशा किस कारण से हुई है ? कृपा करके आप मेरे इस पुत्र का उद्धार कीजिए ।''*

''हे स्वामिन् ! मेरा यह पुत्र बचपन से ही गूंगा और तमाम प्रकार के व्यवहार से उदासीन है । अभी इसकी आयु तेर साल हुई है फिर भी यह हमारी बातचीत नहीं समझता है । इसको इसमें रस नहीं है । जो शास्त्र ब्राह्मणों को पढ़ने चाहिए ऐसे किसी भी शास्त्र का अभ्यास इसने नहीं किया है और न ही इसने वेद पढ़ा है । इसको अक्षरज्ञान ही नहीं है । बड़ी मुश्किल से मैंने इसके उपनयन संस्कार किये हैं । यह अपने किसी मित्र के साथ खेलने नहीं जाता है । इसका ऐसा स्वभाव देखकर कोई शरारती लड़का इसे मारता है तो उसकी मार यह सहन कर लेता है । फिर भी इसे क्रोध नहीं आता है । कभी तो यह भोजन करता है और कभी नहीं करता है । उसके बावजूद भी यह सदैव आनंदी और सुखी रहता है । इसकी यह मूढ़ दशा किस कारण से हुई है ? कृपा करके आप मेरे इस पुत्र का उद्धार कीजिए ।''

शंकराचार्य ने उस बालक को प्रश्न पूछे । वह बालक बहरा या गूंगा न था । वह तो पूर्ण प्रकाशित ज्ञानी था, जीवन्मुक्त था । उस बालक ने शंकराचार्य द्वारा पूछे गये प्रश्नों के जो उत्तर दिये वे एक स्तोत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए ।

ये प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं :

कस्त्वं शिशो कस्य कुतोऽसि गन्ता
किं नाम ते त्वं कुत आगतोऽसि ।
एतन्मयोक्तं वद चार्भक त्वं
मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनोऽसि ॥१॥

'हे शिशो ! तू कौन है ? किसका पुत्र है ? तू कहाँ जा रहा है ? तेरा नाम क्या है ? तू कहाँ से आया है ? मेरी प्रीति के लिए हे बालक ! तू मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दे । तू हमें बहुत प्रिय लगता है ।'

तब उस बालक ने जवाब दिया :

नाहं मनुष्यो न च देवयक्षौ
न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः ।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो
भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः ॥२॥

'मैं मनुष्य नहीं हूँ, देव या यक्ष नहीं हूँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र भी नहीं हूँ । मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थी या वानप्रस्थी भी नहीं हूँ और संन्यासी भी नहीं हूँ । मैं तो ज्ञानस्वरूप परम पवित्र परमानंदरूप ब्रह्म हूँ ।'

निमित्तं मनश्चक्षुरादिप्रवृत्तौ
निरस्ताखिलोपाधिराकाशकल्पः ।

रविर्लोकचेष्टानिमित्तं यथा यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥३॥

'जिस प्रकार सूर्य लोगों को अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त होने की प्रेरणा करता है, उसी प्रकार मन और इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त होने की प्रेरणा करनेवाला एवं आकाशादि उपाधियों से रहित ऐसा शाश्वत् आत्मज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।'

यमग्न्युष्णवन्नित्यबोधस्वरूपं
मनश्चक्षुरादीन्यबोधात्मकानि ।
प्रवर्तन्त आश्रित्य निष्कंपमेकं
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥४॥

'जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता है, ऐसे ही अविकारी और शुद्ध चित्स्वरूपवान् मैं शाश्वत् आत्मज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, जिसका आश्रय करके स्थूल मन तथा इन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त रहते हैं ।'

मुखाभासको दर्पणो दृश्यमानो
मुखत्वात्पृथक्त्वेन नैवास्तु वस्तु ।
चिदाभासको धीषु जीवोऽपि तद्वत्
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥५॥

'जैसे दर्पण में दिखता हुआ मुख का प्रतिबिम्ब वस्तुतः बिम्बरूप मुख से पृथक् नहीं है, किन्तु बिम्बरूप ही है वैसे ही बुद्धिरूपी दर्पण में जीवरूप से प्रतीयमान चैतन्य का प्रतिबिम्ब बिम्बरूप चैतन्य से पृथक् नहीं है किन्तु चैतन्यरूप ही है । वही नित्य, शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।'

यथा दर्पणाभाव आभासहानौ
मुखं विद्यते कल्पनाहीनमेकम् ।
तथा धीवियोगे निराभासको यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥६॥

'जिस प्रकार दर्पण के या दर्पण में दिखनेवाले चेहरे के प्रतिबिम्ब के अभाव में भी चेहरे का अस्तित्व तो होता ही है, उसी प्रकार बुद्धि के अभाव में भी अस्तित्व रखनेवाला मैं शाश्वत् आत्मज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ ।'

मनश्चक्षुरादेर्वियुक्तः स्वयं यो
मनश्चक्षुरादेर्मनश्चक्षुरादिः ।
मनश्चक्षुरादेरगम्यस्वरूपः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥७॥

'मैं शाश्वत् आत्मज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, जो मन और चक्षु आदि से परे है, जो मन का भी मन और चक्षु आदि का भी चक्षु आदि है एवं जो मन, चक्षु आदि से प्राप्त नहीं है ।'

य एको विभाति स्वतःशुद्धचेताः
प्रकाशस्वरूपोऽपि नानेव धीषु ।
शरावोदकस्थो यथा भानुरेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥८॥

'जो स्वयं अकेला ही अपने विशुद्ध स्वप्रकाश अखंड चैतन्यरूप से प्रकाशता है... जैसे, जल से भरे हुए अनेक मटकों में एक ही सूर्य अनेक रूप से भासता है उसी प्रकार एक ही स्वयंज्योति आत्मा अनेक बुद्धियों में अनेक रूप से भासता है, वही नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।'

यथाऽनेकचक्षुः प्रकाशो रविर्न
क्रमेण प्रकाशीकरोति प्रकाश्यम् ।
अनेका धियो यस्तथैकः प्रबोधः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥९॥

'जैसे सूर्यदेवता अनेक नेत्रों को क्रम से प्रकाश न करता हुआ एक साथ ही प्रकाश करता है वैसे ही अनेक बुद्धियों को एक ही साथ सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।'

विवस्वत्प्रभातं यथारूपमक्षं
प्रगृह्णाति नाभातमेवं विवस्वान् ।
यदाभात आभासयत्यक्षमेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥१०॥

'जैसे सूर्य से प्रकाशित रूप को ही नेत्र ग्रहण कर सकता है यानी देख सकता है, सूर्य से अप्रकाशित रूप को नेत्रेन्द्रिय ग्रहण नहीं कर सकती वैसे ही सूर्य भी जिस चैतन्य आत्मा से प्रकाशित हुआ ही रूप, नेत्र आदि प्रकाश देता है । आत्मा से अप्रकाशित सूर्य किसीको कभी भी प्रकाश नहीं दे सकता यानी सर्व-लोक प्रकाशक सूर्यादि ज्योति आत्मप्रकाश से प्रकाशित होती है, वही नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।'

यथा सूर्य एकोऽप्स्वनेकश्चलासु
स्थिरास्वप्यनन्यद्विभाव्यस्वरूपः ।

चलासु प्रभिन्नः सुधीष्वेक एव
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥११॥

'जिस प्रकार एक ही सूर्य स्थिर और अस्थिर जल के विषय में अलग-अलग प्रतिबिम्बित होता हुआ दृश्यमान होता है, उसी प्रकार चर और अचर - इन दोनों प्रकार की बुद्धियों को प्रकाशित करनेवाला मैं अद्वितीय शाश्वत् आत्मज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ ।'

घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं
यथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढः ।
तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥१२॥

'जिस प्रकार बादलों से ढके हुए सूर्य को मंद बुद्धिवाला पुरुष तेज और प्रकाशरहित समझता है, उसी प्रकार मूढ़ बुद्धिवाले पुरुष को जो बद्ध-स्वरूप दिखता है वह शाश्वत् आत्मज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ ।'

समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूतमेकं
समस्तानि वस्तूनि यं न स्पृशन्ति ।
वियद्वत्सदा शुद्धमच्छस्वरूपः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥१३॥

'जो सदा शुद्ध और निर्मल है तथा जो समस्त पदार्थों के अंतर्गत स्थित होते हुए भी वे पदार्थ उसे स्पर्श नहीं कर सकते या उसे दूषित नहीं कर सकते वह मैं शाश्वत् आत्मज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ ।'

उपाधौ यथा भेदता सन्मणीनां
तथा भेदता बुद्धिभेदेषु तेऽपि ।
यथा चन्द्रिकाणां जले चंचलत्वं
तथा चंचलत्वं तवापीह विष्णो ॥१४॥

'जिस प्रकार रंग और आकार में भेद होने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के मणियों में भेद की कल्पना होती है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न बुद्धियों के भेद की उपाधि के कारण एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न स्वरूप से दृश्यमान होता है । जैसे जल में चंद्र अनेक एवं चंचल दिखता है ऐसे ही हे विष्णु ! तुम भिन्न-भिन्न दिखते हो । (वस्तुतः तो तुम एक, नित्य, शुद्ध और अविकारी हो ।)'

ब्राह्मण पुत्र के ये उत्तर सुनकर श्रीमद् आद्य शंकराचार्य समझ गये कि यह बालक तो ब्रह्म को हस्तामलकवत् यानी हाथ में रखे हुए आँवले की तरह स्पष्टतः जाननेवाला ब्रह्मवेत्ता है । अतः उन्होंने उसका नाम भी हस्तामलक रख दिया और वह प्रश्नोत्तररूप स्तोत्र 'हस्तामलक स्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । हस्तामलक आगे चलकर शंकराचार्य के चार पट्टशिष्यों में से एक हुए ।

(पृष्ठ २० का शेष)

होगा । परमात्मा के पास आपकी अक्ल होशियारी नहीं चल सकती है । आपकी डिग्रियाँ और प्रमाणपत्र वहाँ नहीं चल पायेंगे । निर्मलता, पवित्रता और स्नेह ही चलेगा । उसके बनकर, उसके होकर नाचोगे तो चलेगा, वह खुश होगा । उसके होकर जो भी करोगे, वह खुश होगा । शर्त यही है कि मिटना पड़ता है, उसका बनना और रहना पड़ता है । बगैर उसके काम नहीं चल सकता ।

बीज जब तक अपना अस्तित्व रखता है तब तक पौधा नहीं बन पाता । पौधा अगर अपना अस्तित्व बनाये रखे तो विशाल वृक्ष नहीं बन पाता इसलिए मिटो... खो जाओ... जितना खोओगे, जितना मिटोगे उतना ही पाओगे ।

गुरुभक्तियोग एक समर्पण का मार्ग है, मिटने का मार्ग है, हटने का मार्ग है, खोने का मार्ग है, नामोनिशान तक मिटा देने का मार्ग है । व्यक्ति जितना खोता है, उतना पाता है । जितना सूक्ष्म होता है, उतना ही महान् होता है । फिर किसीकी गाली उसे प्रभावित नहीं करती, किसीकी प्रशंसा उसे प्रभावित नहीं करती क्योंकि वह मिट चुका है । जीते-जी मिट चुका है । मरकर तो सभी मिटते हैं, सभी खोते हैं लेकिन फिर क्या ? जो जीते-जी मिट चुका, जीते-जी खो चुका, जीव मिटकर शिव बन चुका वही धन्य है... ॐ शांति... खूब शांति... गहरी शांति...

अगर आप गुरुसेवा में रममाण रहते हैं तो आप चिन्ताओं को जीत सकते हैं । सब चिन्ताओं का यह अचूक मारण है । - स्वामी शिवानंदजी

ध्यान का अर्थ

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

कम-से-कम सुनें, कम-से-कम मन में संकल्प-विकल्प उत्पन्न हों, कम-से-कम इन्द्रियों को भोजन दें । जैसे, केवल पानी में इतनी शक्ति नहीं होती लेकिन पानी को जब गर्म किया जाता है, तब उसी पानी से बनी बाष्प में भारी शक्ति आ जाती है और टनों वजनवाली ट्रेनों तक को ले भागती है । इसी प्रकार बुद्धि सूक्ष्म होती है तो उसमें अनुपम योग्यता आ जाती है । बुद्धि अगर स्थूल होगी, मोटी होगी तो परमात्मा में नहीं लग पायेगी । अतः सूक्ष्मता चाहिए, गहराई चाहिए ।

> *बुद्धि सूक्ष्म होती है तो उसमें अनुपम योग्यता आ जाती है । बुद्धि अगर स्थूल होगी, मोटी होगी तो परमात्मा में नहीं लग पायेगी । अतः बुद्धि में सूक्ष्मता चाहिए, गहराई चाहिए ।*

चुप रहना, मौन रहना भी कोई मजाक की बात नहीं है । बहुत कठिन है । चुप वे ही रह पाते हैं जिनका लक्ष्य परमात्मा होता है । मौन वे ही रह पाते हैं, गहरे भी वे ही उतर पाते हैं, जिनका लक्ष्य परमात्मा होता है । अन्यथा, मनोरंजन और मनपसंद कार्यों में ही मनुष्य की समय-शक्ति खर्च हो जाती है । मौन रहकर, उसीमें डूब जाना - यह भी एक बहुत बड़ी साधना है, बहुत बड़ी कमाई है ।

> *चुप वे ही रह पाते हैं जिनका लक्ष्य परमात्मा होता है । मौन रहकर, उसीमें डूब जाना - यह भी एक बहुत बड़ी साधना है । बहुत बड़ी कमाई है ।*

सब काम करने से नहीं होते हैं । कुछ काम ऐसे भी हैं जो न करने से होते हैं । ध्यान ऐसा ही एक कार्य है । आप दुनिया का कोई भी काम करो लेकिन जाने-अनजाने आप ध्यान के जितने करीब होगे उतने ही आप उस काम में सफल होगे । नींद में आप परमात्मा के थोड़े करीब होते हो, ध्यान के निकट होते हो, तभी शक्ति आ पाती है, विश्रान्ति मिल पाती है और उसी विश्रान्ति से, उसी नयी शक्ति से, नयी स्फूर्ति से नये दिन की नई सुबह से पुनः कार्य का आरंभ होता है ।

मन में संकल्प भी आते हैं, विकल्प भी आते हैं । इच्छाओं की, वासनाओं की धारा अविरत बहती रहती है ।

ध्यान का मतलब क्या ?

ध्यान है डूबना । ध्यान है आत्मनिरीक्षण करना... 'हम कैसे हैं' यह देखना... 'कहाँ तक पहुँचे हैं' यह देखना... 'कितना अपने-आपको भूल पाये हैं' यह देखना... 'कितना विस्मृतियोग में डूब पाये हैं, यह देखना...

सत्संग भी उसीको फलता है जो ध्यान करता है । ध्यान में विवेक जागृत रहता है । ध्यान में बड़ी सजगता, सावधानी रहती है ।

करने से प्रेम कम करें, न करने की ओर प्रीति बढ़ायें । करने के अंत में न करना ही शेष रहता है । जितना भी आप करोगे उसके अंत में न करना ही शेष रहेगा ।

ध्यान अर्थात् न करना... कुछ भी न करना । जहाँ कोशिश होती है, जहाँ करना होता है, वहाँ थकावट भी होती है । जहाँ कोशिश होती है, थकावट होती है, वहाँ आनंद नहीं होता । जहाँ कोशिश भी नहीं होती, आलस्य-प्रमाद नहीं होता, अपितु निःसंकल्पता होती है, जो स्वयमेव होता है, वहाँ सिवाय आनंद के कुछ नहीं

होता और वह आनंद निर्विषय होता है, निर्विकारी होता है । वह आनंद संयोगजन्य नहीं होता, परतंत्र और पराधीन नहीं होता वरन् स्वतंत्र और स्वाधीन होता है । मिटनेवाला और अस्थायी नहीं होता, अमिट और स्थायी होता है ।

सब उसमें नहीं डूब पाते। कोई-कोई बड़भागी ही डूब पाते हैं और जो डूब पाते हैं वे खोज भी लेते हैं । समुद्र के भीतर रत्न खोजे जाते हैं लेकिन जो रत्न खोजते हैं उनको कई बार असफल भी होना पड़ता है। रत्न ढूँढनेवाले गोताखोरों को कई बार खाली हाथ ही आना पड़ता है । लेकिन वे कोशिश करना नहीं छोड़ते, हारते नहीं, थकते नहीं, टूटते नहीं, विश्वास को नहीं खोते वरन् अथक प्रयत्न, अदम्य साहस और भरपूर निष्ठा के साथ फिर-फिर से गोता लगाते हैं और वे पुरुषार्थी रत्न खोज ही लेते हैं । लाखों के रत्न उनके हाथ लग जाते हैं । अगर निराश होते तो लाखों के रत्नों से हाथ धोना पड़ता ।

बाहरी नश्वर धन को प्राप्त करने के लिए भी जब उन गोताखोरों में अदम्य साहस और उत्साह होता है तो जिनको आत्मा-परमात्मारूपी शाश्वत् हीरा प्राप्त करना है ऐसे उत्तम साधक भला अपने उत्साह को क्यों बलि पर चढ़ायेंगे ? निराश-हताश क्यों होएँगे ? आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों... फिर-फिर से गोता, फिर-फिर से गहराई में... जो नयी शक्ति, नये उमंग के साथ, पूरे विश्वास के साथ फिर-फिर से प्रयत्न जारी रखते हैं अन्ततः वे सफल हो ही जाते हैं। गुरुकृपा प्राप्त कर लेते हैं, परमात्मानुभव प्राप्त कर लेते हैं । दिव्यातिदिव्य अनुभव उनके भीतर प्रगट होने लगते हैं ।

> *सब काम करने से नहीं होते हैं । कुछ काम ऐसे भी हैं जो न करने से होते हैं । ध्यान ऐसा ही एक कार्य है ।*

> *ध्यान का मतलब क्या ? ध्यान है डूबना । ध्यान है आत्म-निरीक्षण करना... 'हम कैसे हैं' यह देखना... सत्संग भी उसीको फलता है जो ध्यान करता है ।*

अध्यात्म का रास्ता अटपटा जरूर है । खटपट भी थोड़ी-बहुत होती है और समझ में भी झटपट नहीं आता है लेकिन अगर थोड़ा-सा भी समझ में आ जाये, धीरज न टूटे, साहस न टूटे और परमात्मा को पाने का लक्ष्य न छूटे तो उन्हें प्राप्ति हो ही जाती है । असंभव कुछ नहीं, सब संभव है । जहाँ चाह होती है वहाँ राह भी मिल जाती है ।

जितना समय संसार के पीछे लगाया बदले में उतना नहीं मिला, न मिलेगा । वरन् जितना मिला, वह भी छूट जायेगा। उससे आधा समय भी अगर भगवान के प्रति लगाते, परमात्म-ध्यान और परमात्म-शांति में उतना समय व्यतीत करते तो स्थिति कुछ और होती, स्थिति कुछ निराली होती क्योंकि सृष्टिकर्त्ता से कुछ भी छुपा नहीं है । चाहिए केवल विश्वास, दृढ़ता, साहस, लगन...

निर्मल मन जन सो मोहि पावा...

निर्मलता, पवित्रता... खोपड़ी में जितना बाहर का कचरा भरोगे उतना ही निकालना पड़ेगा । पढ़ा हुआ कपटी उतना जल्दी भगवान को नहीं पा सकता, जितना सरल अनपढ़ पा सकता है । पढ़े हुए को तो, जो खोपड़ी में भरा है उसे पहले निकालना पड़ता है जबकि अनपढ़ की कैसेट कोरी (Blank) होती है । उसने कचरा कम भरा हुआ होता है अतः निर्मल और निर्दोष जल्दी हो पायेगा जबकि पढ़ा-लिखा देरी से

(शेष पृष्ठ १८ पर)

> *अध्यात्म का रास्ता अटपटा जरूर है । खटपट भी थोड़ी-बहुत होती है और समझ में भी झटपट नहीं आता है लेकिन अगर थोड़ा-सा भी समझ में आ जाये, धीरज न टूटे, साहस न टूटे और परमात्मा को पाने का लक्ष्य न छूटे तो प्राप्ति हो ही जाती है ।*

चित्त की विश्रांति : प्रसाद की जननी

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हर एक मनुष्य आनंद चाहता है, हर एक मनुष्य सुख चाहता है, हर एक मनुष्य मुक्ति चाहता है। कोई भी बंधन नहीं चाहता है।

मानवजात का एक समूह है। उसमें चार प्रकार के मनुष्य हैं। सब मनुष्य आनंद चाहते हैं, हृदय की शांति और शीतलता चाहते हैं। कोई ऐसा नहीं चाहता कि मेरा हृदय अशांत हो... मैं पापी होऊँ... मैं सुख से दूर चला जाऊँ। सब सुख की तरफ ही भाग रहे हैं। कई लोग सुख की तरफ इस तरह भागते हैं कि वहाँ सुख मिलता नहीं, दुःख ही दुःख मिलता है, मुसीबत ही मुसीबत मिलती है।

> *विषयों का सुख दाद की खुजली जैसा सुख है। उसे खुजलाते हैं तो मजा आता है लेकिन बाद में सत्यानाश कर देता है।*

जैसे ऊँची गरदन होने से ऊँट अच्छा घास छोड़कर कँटीले वृक्षों के पत्तों को खाता है। काँटे मुँह में लगने से खून निकलता है। ऊँट समझता है कि कितना मजेदार है! उसे यह पता ही नहीं कि यह मजा अपने लिये सजा है।

ऐसे ही हम सुख चाहते हैं, हृदय की तृप्ति चाहते हैं लेकिन विषय-विकारों का कँटीला सुख लेते हैं। शुरूआत में तो अच्छा लगता है किन्तु बाद में ऊँट जैसा हाल होता है। विषयों का सुख दाद की खुजली जैसा सुख है। उसे खुजलाते हैं तो मजा आता है लेकिन बाद में सत्यानाश कर देता है।

कुछ लोग जल्दी सुख लेने जाते हैं। जहाँ सुख है उस अंतरात्मा की तरफ नहीं जाते बल्कि सुख के बहाने सुख से दूर चले जाते हैं। परिणाम का विचार नहीं करते। ऐसा बोलने से, ऐसा करने से, ऐसा भोगने से क्या परिणाम आएगा यह नहीं सोचते। उनको पामर कहते हैं।

दूसरे प्रकार के लोग होते हैं विषयी। कथा में जायेंगे, सत्संग सुनेंगे तो कहेंगे कि 'महाराजजी की बात तो ठीक है, ज्ञान तो अच्छा है लेकिन क्या करें यार! संसार में रहते हैं... जरा इतना कर लें फिर देखा जायेगा।' इनको विषयी कहते हैं।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो ज्ञान की बात सुनते हैं तो थोड़ा उधर चलते भी हैं। जो उत्तम जिज्ञासु हैं, बुद्धिमान हैं, वे तो बस, गलती को समझकर विषय-विकारों से अपनेको बचाकर सच्चे सुख की तरफ चल पड़ते हैं। थोड़े ही दिनों में उनको भगवद्सुख की प्राप्ति हो जाती है। वे अपने घर में आ जाते हैं। अपना घर क्या है ? चित्त की विश्रांति अपना घर है। चित्त की विश्रांति प्रसाद की जननी है। चित्त की विश्रांति प्रभुरस को प्रकट करनेवाली कुँजी है। चित्त की विश्रांति से सामर्थ्य प्रकट होता है और सामर्थ्य का सदुपयोग करने से निर्भयता आती है।

> *चित्त की विश्रांति प्रसाद की जननी है। चित्त की विश्रांति प्रभुरस को प्रकट करनेवाली कुँजी है। चित्त की विश्रांति से सामर्थ्य प्रकट होता है और सामर्थ्य का सदुपयोग करने से निर्भयता आती है।*

जो कपट करके यश चाहते हैं या सामर्थ्य का दुरुपयोग करके सुखी होना चाहते हैं, उनका सामर्थ्य नष्ट होते ही हाल-बेहाल हो जाता है।

सामर्थ्य का सदुपयोग करो । अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ कम करो । अपने व्यक्तिगत व्यापार का ज्यादा विस्तार मत करो ।

जो सामर्थ्य मिला है उससे औरों की सेवा करके अपना कर्जा उतारो। संसार के सुख-भोग की इच्छा छोड़कर अपने लिये अंदर का सुख खोजो और बाहर के सुख की साधन-सामग्री का उपयोग औरों के लिये करो । यह सामर्थ्य का सदुपयोग हुआ । ऐसे ही बुद्धि का भी सदुपयोग करो, वस्तु का भी सदुपयोग करो और विचारों का भी सदुपयोग करो ।

आप सृष्टि में मंगलमय देखने लग जाओ, चित्त जल्दी पवित्र होगा, शांत होगा ।

ध्यान-भजन करने बैठते हैं तो फालतू विचार बार-बार आयेंगे । उन फालतू विचारों के पीछे भगवान की भावना करो । भगवान अपना शुद्ध ज्ञान मनुष्यों को देते हैं । उसे लेकर उस भगवद्ज्ञान से अपने विचारों को भर दो ।

जब-जब भय, शोक, दुःख होता है तो आसक्ति से ही होता है । मनुष्य अगर पक्कड़-अक्कड़ छोड़ दे तो दुःख और भय को जगह ही नहीं मिलेगी ।

मान लो, विचार पानी के आये तो पानी की गहराई में प्रभु की चेतना है । जल के, थल के, तेज के, वायु के, आकाश के विचार आयें तो उन जल, थल, तेज, वायु और आकाश- इन सबकी गहराई में प्रभु ! तू है... ऐसे विचारों को भर दो । इस भावना से विचारों का सदुपयोग हो जायेगा । मनोराज्य की खटपट से बचकर मन विश्रांति की तरफ आयेगा ।

भगवान की भाषा में कहें तो :

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

'हे धनंजय ! मेरे सिवाय किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है, यह संपूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गूंथा हुआ है ।' (भगवद्गीता : ७.७)

जैसे सूत की मणियों में सूत का धागा, सोने की मणियों में सोने का तार पिरोया होता है, ऐसे ही सारा जगत भगवद् चेतना में और भगवद् चेतना सारे जगत में पिरोयी हुई है ।

एक बार अखंडानंद सरस्वती साबरमती में गांधीजी का चित्र देखने गये थे । चित्र क्या था ? सूत का बुना हुआ था । सब सूत ही सूत था, लेकिन ऐसी कला थी कि उसमें गांधीजी दिख रहे थे । अब चश्मा भी सूत और गांधीजी की आँखें भी सूत । उनके हाथ में डंडा है वह भी सूत और उनकी चप्पल भी सूत । सूत में डिझाईन थी । सब सूत ही सूत था । ऐसे ही 'ब्रह्म में जो जगत की डिझाईन है वह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है...' ऐसा जो चिंतन करता है वह संयमी और पवित्र रहता है। उसका अंतःकरण जल्दी शुद्ध हो जाता है ।

आप सृष्टि में मंगलमय देखने लग जाओ, चित्त जल्दी पवित्र होगा, शांत होगा । इस पर दोष, उस पर दोष... इसके-उसके अवगुणों का चिंतन करोगे तो आपका मन दूषित होगा ।

जो मंजिल चलते हैं वे शिकवा नहीं किया करते ।
और जो शिकवा करते हैं वे मंजिल नहीं पहुँचा करते ॥

फरियाद हटाकर तुम धन्यवाद दो । हर हाल में तुम उसकी करुणाकृपा को देखो । इससे तुम जल्दी कल्याण को प्राप्त होगे ।

दंडकारण्य में भगवान श्रीराम, सीताजी और लक्ष्मणजी रहे थे । तब वहाँ के सिख्खड़ साधुओं ने सोचा कि अपन नाहक अनासक्त होकर, विरक्त होकर जंगलों में अकेले पड़े हैं । अपन भी शादी-विवाह कर लेते और अपनी-अपनी सीता लाते तो अपन भी मजे से भजन करते । लखन कंदमूल ले आता और सीताजी सँवारकर देती, पैरचंपी करती और अपन आराम से भजन करते ।

उनके मन में ये विचार कुछ दिनों तक तो रहे, लेकिन फिर जब रावण सीताजी को ले गया तो रामजी 'हाय सीते ! हाय सीते ! सीते... सीते... !' करने लगे तब साधुबाबाओं ने कहा :

''राम जैसे राम को भी रोना पड़ता है तो अपना क्या हाल होता भैया ? अपन तो ऐसे ही भले, ऐसे ही चंगे ।''

भगवान का रामावतार मनुष्य को सीख देता है कि भगवान भी अगर आसक्ति करेंगे तो भगवान भी दुःखी होंगे फिर औरों की तो बात ही क्या ?

जब-जब भय, शोक, दुःख होता है तो आसक्ति से ही होता है, पक्कड़-अक्कड़ से ही होता है। मनुष्य अगर पक्कड़-अंक्कड़ छोड़ दे तो दुःख और भय को जगह ही नहीं मिलेगी ।

चित्त की विश्रांति से पक्कड़-अक्कड़ छूटती है । जो करना चाहिए और जो कर सकते हो उसे कर डालो और जो नहीं करना चाहिए और नहीं कर सकते उसकी इच्छा छोड़ दो । उसे हृदय से निकाल दो । उससे चित्त की विश्रांति मिलती है ।

तुमको जो करना चाहिए वह तुम कर डालोगे तो पिया को तुम्हारे लिए जो करना होगा, वह भी कर देगा, उसमें देर नहीं लगेगी ।

तू मुझे उर आंगन दे दे । मैं अमृत की वर्षा कर दूँ ।
तू तेरा अहं दे दे । मैं परमात्मा का रस भर दूँ ॥

अगर ऐसा कहें कि अहं तो नहीं देंगे, अहं तो हम अपने पास रखेंगे, लेकिन आप रस भर दो... तो भैया !

इश्क करना और जाँ बचाना
यह भी कभी हो सकता है क्या ?

जैसे सूत की मणि, सूत के धागे से पिरोयी हुई है, जैसे तरंग भिन्न-भिन्न दिखते हुए भी सब जल ही जल है, मिट्टी के बर्तन भिन्न-भिन्न दिखने पर भी सब मिट्टी ही मिट्टी हैं, शक्कर के खिलौने सब भिन्न-भिन्न होते हुए भी सब शक्कर ही शक्कर है, ऐसे ही व्यक्तियों के आकार (Model) भिन्न-भिन्न, उनके विचार भिन्न-भिन्न, उनके कर्म भिन्न-भिन्न, उनके स्वभाव भिन्न-भिन्न, लेकिन उन सबमें अभिन्न एक आत्मा ज्यों-का-त्यों है... ऐसा जो सुमिरन करता है उसको विश्रांति मिलती है ।

❀

(पृष्ठ ३९ का शेष)

नारदजी तो 'नारायण... नारायण...' करते हुए राज-दरबार में पहुँच गये । देवर्षि नारद को देखकर राजा ने उनका अर्घ्यपाद्य से पूजन किया ।

नारदजी : ''राजन् ! पुत्रप्राप्ति की बहुत-बहुत बधाई हो ।''

राजा : ''आपके ही आशीर्वाद का फल है ।''

नारदजी : ''मैं तुम्हारे पुत्र को देखना चाहता हूँ राजन् !''

राजा : ''यह तो हमारा अहोभाग्य है !''

नारदजी : ''किंतु मेरी दो शर्तें हैं । मैं बालक के पास जाऊँ तब वहाँ कोई भी न रहे, न तुम और न ही कोई दास-दासी । दूसरी शर्त यह है कि बालक जिस कमरे में हो, उसमें दो दरवाजे हों ।''

राजा संतों और बड़ों का आदर करता था, उनमें श्रद्धा रखता था । उसने तुरंत आज्ञानुसार व्यवस्था करवा दी ।

कथा कहती है कि नारदजी उस बालक को अपना प्रश्न करने ही जा रहे थे कि अचानक वह नवजात शिशु ही बोल उठा :

''मुनिवर ! सत्संग की महिमा पूछने आये हैं न ?''

नारदजी तो दंग रह गये ! बोले : ''अरे, तू अभी इतना छोटा है, अभी-अभी तेरा जन्म हुआ है और इस प्रकार बड़ों की नाईं कैसे बोलता है और मेरे प्रश्न के बारे में तुझे कैसे पता चला ? तू कौन है ?''

वह नवजात शिशु बोला : ''ऋषिवर ! मैं वही कीड़ा, तोता और बछड़ा हूँ जिनसे आपने सत्संग की महिमा पूछी थी । आपके दर्शन एवं 'सत्संग' शब्द को सुनने मात्र से कीड़े में से क्रमशः तोते और फिर बछड़े के रूप में मेरा जन्म हुआ और अब राजा के यहाँ मेरा जन्म हुआ है । अब मैं आप जैसे संतपुरुष की शरण में जाकर, ब्रह्मज्ञान का सत्संग सुनकर अपना मनुष्य जन्म सार्थक करना चाहता हूँ ।''

वास्तव में संत-दर्शन और सत्संग की महिमा अनूठी है ।

शक्ति का सदुपयोग करो

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हमारे अंदर तीन शक्तियाँ मौजूद हैं :

(१) करने की शक्ति (२) मानने की शक्ति और (३) जानने की शक्ति ।

बच्चा जब थोड़ा-सा समझने लायक होता है तब पूछता है : ''यह क्या है ?... वह क्या है ?...'' बच्चा माता-पिता, भाई-बहन सबसे पूछता है क्योंकि जानने की शक्ति उसमें मौजूद है । मनुष्य इस जानने की शक्ति का यदि सदुपयोग करे तो वह अपने-आपको भी जान सकता है और अपने-आपको यदि उसने जान लिया तो विश्वनियंता को भी ठीक से जान लेगा । जैसे चावल की देग में से दो दानों को ठीक से जान लिया तो और सब दानों को भी मनुष्य जान लेता है । इसी प्रकार अपने अंतःकरण में स्थित उस सच्चिदानंद को ठीक से जान लिया तो पूरे विश्व को जानना आसान हो जाता है ।

मनुष्य में जानने की जिज्ञासा तो छिपी हुई है, जिसकी वजह से बालक 'यह क्या है... वह क्या है...' पूछता है किन्तु 'मैं क्या हूँ ?' यह पूछे उससे पहले ही उसके ऊपर नाम थोप दिया जाता है : ''तेरा नाम मोहन है... तेरा नाम सोहन है...'' आदि आदि । ये 'मोहन-सोहन' आदि जो नाम रखे जाते हैं, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं वरन् नाम हैं हाड़-मांस के शरीर के व्यवहार को चलाने के लिए । जन्म के समय शिशु का कोई नाम नहीं होता । जन्म के ६-८ दिन के बाद या २१-४० दिन के बाद नाम रखा गया और मृत्यु के पश्चात् भी वह नामवाला शरीर नहीं रहता है । किन्तु शरीर के जन्म के पहले भी तुम थे, शरीर के जन्म के समय भी तुम थे और शरीर के मरने के बाद भी तुम रहोगे क्योंकि तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है आत्मा, वास्तविक स्वरूप है परमात्मा और परमात्मा अबदल है । उसीको जानने के लिए ही यह जानने की शक्ति मिली थी किन्तु जिससे जानने की शक्ति मिली थी उसे नहीं जाना और जिसे न जानने पर भी चल जाता उसीको जानने में अपने पूरे समय-शक्ति का व्यय कर दिया ! 'यह मारवाड़ी है... यह पंजाबी है... यह सिन्धी है... यह मि. फलाने हैं...' - यह सब तो जाना किंतु जानने की शक्ति का सदुपयोग नहीं किया इसीलिए बंधन में पड़े ।

> *शरीर के जन्म के पहले भी तुम थे, शरीर के जन्म के समय भी तुम थे और शरीर के मरने के बाद भी तुम रहोगे क्योंकि तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है आत्मा ।*

मानने की शक्ति सबके पास है । मानने की शक्ति की वजह से सब मानते रहते हैं लेकिन अज्ञानियों की बात मान-मानकर, संसार की आसक्तिवालों की बात मान-मानकर हम भी अपने-आपको उसी आसक्ति में धकेलते हैं । मानने की शक्ति का अगर हम सदुपयोग करें तो जहाँ से मानने की शक्ति उत्पन्न होती है उसी सच्चिदानंद कृष्ण तत्त्व को, राम तत्त्व को, शिव तत्त्व को मानकर हम मुक्त भी हो सकते हैं ।

> *इन्सान-इन्सान में अगर वैर है, दुश्मनी है तो लंबी-लंबी पूजाएँ करना, लंबी-लंबी नमाजें पढ़ना व्यर्थ हैं ।*

इसी प्रकार मानव में करने की शक्ति भी छुपी हुई है लेकिन करने की शक्ति जहाँ से आयी है उस सच्चिदानंद परमात्मा की प्रसन्नता के लिए उसका प्रयोग

करें तो हमारा करना, हमारा व्यवहार भी भक्ति बन जायेगा । लंबी-लंबी पूजाएँ करो, लंबी-लंबी नमाजें पढ़ो लेकिन इन्सान-इन्सान में अगर वैर है, दुश्मनी है तो लंबी-लंबी पूजाएँ करना, लंबी-लंबी नमाजें पढ़ना व्यर्थ है क्योंकि जिसकी तुम बंदगी करते हो वही ला-इल्लाह-इल्लिलाह, वही रोम-रोम में रमनेवाला राम हर इन्सान की गहराई में छुपा हुआ है । शाह हाफिज ने कहा है :

''अय इन्सान ! तू सौ मन्दिर तोड़ दे, सौ मस्जिद तोड़ दे लेकिन एक जिन्दे दिल को मत सताना क्योंकि उसमें खुदा खुद रहता है ।''

''अय इन्सान ! तू सौ मन्दिर तोड़ दे, सौ मस्जिद तोड़ दे लेकिन एक जिन्दे दिल को मत सताना क्योंकि उसमें खुदा खुद रहता है ।''

मुसलमान अपने ढंग से संतों-फकीरों और शास्त्रों की बात माने, हिन्दू अपने ढंग से माने तो संसार नंदनवन हो जाये । पड़ौसी अपने ढंग से माने और हम अपने ढंग से मानें तो संसार में जो कलह, अशान्ति, स्वार्थ है, एक-दूसरे को निचोड़कर सुखी होने की जो बेवकूफी है, वह संसार से विदा हो जाये ।

आज मनुष्य खुद तो सुख की नींद लेना चाहता है लेकिन दूसरे का शोषण करके । तलवार, पिस्तौल, बंदूक या बम का सहारा लेकर सुखी होना चाहता है लेकिन हिंसा सदैव डरपोक होती है ।

आज मनुष्य खुद तो सुख की नींद लेना चाहता है लेकिन दूसरे का शोषण करके । तलवार, पिस्तौल, बंदूक या बम का सहारा लेकर वह सुखी होना चाहता है लेकिन हिंसा सदैव डरपोक होती है । आपने देखा-सुना होगा कि शेर जब जंगल में चलता है तो बार-बार मुड़कर देखता है कि 'मुझे कोई खा तो नहीं जायेगा ?' अब, उस कमबख्त को कौन खा जायेगा ? उसने तो हाथी के सिर का खून पिया है । उसकी हिंसा ही उसे डराती है । ऐसे ही हम स्वार्थमय व्यवहार में लगकर भयभीत हो रहे हैं कि 'यह तो नहीं हो जायेगा...! वह तो नहीं हो जायेगा... !'

करने की शक्ति का उपयोग जिससे किया जाता है उसके लिये नहीं करते हैं वरन् व्यर्थ की आसक्ति के लिए करते हैं तो करने की शक्ति हमको बाँध देती है । जानने की शक्ति है लेकिन जिससे जानने की शक्ति आती है उसको नहीं जानते हैं तो हम जन्म-मरण के चक्र में फँसते हैं । मानने की शक्ति छुपी है लेकिन जिसको मानना चाहिए उस सत्यस्वरूप अपने आत्मा को नहीं मानते हैं और हाड़-मांस के शरीर को अपना मानते हैं कि 'मैं फलाना भाई हूँ... मैं सेठ हूँ... मैं नौकर हूँ...'

यह सारा थोपा हुआ कचरा अपनी खोपड़ी में लेकर घूमते हैं तभी डर लगता है कि 'नहीं, मेरी इज्जत न चली जाये... कहीं मेरा पद न चला जाये...'

अरे ! तू कितना भी संभाल लेकिन जब शरीर ही नहीं रहेगा तो मिला हुआ पद, मिले हुए मकान, दुकान, पुत्र-परिवार कब तक रहेंगे ? तू तो वहाँ नजर रख जिसको काल भी नहीं छू सकता । उस अकाल-स्वरूप आत्मा का श्रवण कर । उसीका तू सहारा ले । इससे तेरा तो मंगल हो ही जायेगा, साथ-ही-साथ तेरी मीठी निगाहें जहाँ तक पड़ेंगी उन लोगों का हृदय भी पावन होने लगेगा । तू वह चीज है ।

मन तू ज्योतिस्वरूप अपना मूल पिछान ।

तू ज्योतिस्वरूप है, तू ज्ञानस्वरूप है, तू प्रेमस्वरूप है, तू आनंदस्वरूप है, तू मुक्तिस्वरूप है । उसीको तू जान । आटा-दाल, घी-तेल और मिर्च-मसाले में ही सारी जिन्दगी खपाने के लिए तू पैदा नहीं हुआ है । बड़े शर्म की बात है कि मनुष्य जन्म पाकर भी तू दुःखी, चिन्तित और भयभीत रहता है । दुःखी, चिंतित और भयभीत तो वे रहें जिनके माई-बाप मर गये हैं, जो निगुरे हैं । तेरे माई-बाप तो तेरा चैतन्य तेरे साथ है... तेरे पास तो गुरु का ज्ञान है । जो होगा, देखा जायेगा । फिकर फेंक कुएँ में... हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ...

तू अपने ज्ञानस्वरूप में, अपने प्रेमस्वरूप में, अपने आनंदस्वरूप में गोता मार । उसको सदा साथ मान । बाहर की 'तू-तू... मैं-मैं' वाहवाही और निंदा यह इन्द्रियों का धोखा है । बाहर का सुख भी धोखा है और बाहर का दुःख भी धोखा है । बाहर का धन भी धोखा है और बाहर की गरीबी भी धोखा है । वास्तव में तू न सुखी है न दुःखी है, न अमीर है न गरीब है, न मोटा है न पतला है, न काला है न गोरा है । काला-गोरा चमड़ा होता है, मोटा-पतला शरीर होता है, सुखी-दुःखी मन होता है किन्तु तू इतना भोला महेश हो जाता है कि चमड़े से मिलकर अपने को काला-गोरा मानने लगता है, मांस से जुड़कर अपने को मोटा-पतला मानने लगता है और मन से जुड़कर अपने को सुखी-दुःखी मानने लगता है, वरना तू तो इन सबको देखनेवाला, इनका साक्षी चैतन्य आत्मा है, सुखस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है... बस, तू अपने उसी स्वरूप को जानकर मुक्त हो जा... दृश्य में मत उलझ वरन् दृष्टा बन जा... अपने आत्मस्वभाव में आ जा ।

बड़े शर्म की बात है कि मनुष्य जन्म पाकर भी तू दुःखी, चिन्तित और भयभीत हो रहा है । दुःखी, चिंतित और भयभीत तो वे रहें जिनके माई-बाप मर गये है, जो निगुरे हैं । तेरे माई-बाप तो तेरा चैतन्य तेरे साथ है ।

जब-जब दुःख आये तो समझ लेना कि बेवकूफी का फल है । दुःख, भय, चिंता जब-जब आये, तब-तब पानी के तीन घूँट पीकर पंजों के बल पर थोड़े कूदना (Jump मारना) और सोचना कि : 'दुःख आया है यह तो मेहमान है और मेहमान घर आये तो कुलीन लोग दरवाजा बंद थोड़े ही करेंगे वरन् उसकी आवभगत करेंगे कि 'आओ भाई ! आओ ।' ऐसे ही तुम दुःख का भी स्वागत करो कि 'दुःखरूपी अतिथि आये हो तो आओ । कितने दिन रहोगे यह हम भी देखते हैं । आओ, भाई ! आओ ।' ऐसा चिंतन करने मात्र से दुःख हँसी में बदल जायेगा यह बिल्कुल पक्की बात है । ऐसे ही सुख आये तो उसको भी कह दो कि, 'भाई ! तू भी आया है ? जो आता है वह जाता है लेकिन् मैं तो ज्यों-का-त्यों रहता हूँ अखण्ड, एकरस, नित्य मुक्त, साक्षी, चैतन्यरूप... तेरे आने-जाने से मैं अपनी महिमा से च्युत क्यों होऊँ ?''

सुख से चिपकना नहीं, दुःख से डरना नहीं ।
तेरे साथ सच्चिदानंद स्वयं है यह समझ खोना नहीं ॥

हरि ॐ... ॐ... ॐ... हरि ॐ... ॐ... ॐ...

इस प्रकार के विचार बार-बार करो । परमेश्वर के नाम का जप करो । अपने परमेश्वरीय स्वभाव को जगाओ । हिम्मत, सद्गुण, सदाचार, सहानुभूतिभरा व्यवहार तुम्हारे सोहं स्वभाव को जगा देगा । तुम्हारी जानने की शक्ति का सदुपयोग सत्य-स्वरूप परमात्मा को जानने में करो । सत्य का साक्षात्कार करो ।

हे साधक ! हम तुम्हारा स्वर्णमय सूर्योदय देखना चाहते हैं । वाह... वाह... वाह... ॐ... ॐ... ॐ... शांति... शांति... शांति...

❀

(पृष्ठ ३४ का शेष)

अब मुक्त किया गया है ।''

नौकर ने सचमुच में जब खच्चरों को ऐसा एहसास कराया तो वे 'हैंकू... हैंकू...' करके दौड़ पड़े ।

सबकी सब मान्यताएँ, सारे बंधन मन की कल्पना मात्र है । अज्ञान से, धारणाओं से हमारा चिदाभास बँध गया है । उसे खोलने लगो... मिटाते जाओ... जिससे हमारा मन भी सीधा परमात्मा के पास दौड़कर जाए । उन खच्चरों की मंजिल तो शायद दूर थी लेकिन हमारी मंजिल तो बिल्कुल दूर नहीं है । जहाँ हम खड़े हैं वहीं हमारी मंजिल है । पैर उठाने तक की भी आवश्यकता नहीं है किंतु 'बँधे गये हैं' ऐसा माया का मानसिक एहसास इतना जोर पकड़ चुका है कि जिससे ब्रह्म होते हुए भी हम अपने को जीव समझ बैठे हैं और यह बंधन तभी छूटता है जब सद्गुरु करुणा-कृपा करके यह एहसास करा देते हैं कि हे जीव ! तू नर नहीं, नारायण है... मानव नहीं, महेश्वर है... जीव नहीं, शिवस्वरूप है... ॐ... ॐ... ॐ...

युक्ति से मुक्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

'जो आकांक्षाओं से रहित, बाहर-भीतर से पवित्र, दक्ष, उदासीन, व्यथा से रहित, सभी नये नये कर्मों के आरम्भ का सर्वथा त्यागी है वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है ।' (गीता : १२.१६)

ऐसे भक्त के पीछे भगवान फिरते हैं । कबीरजी ने कहा भी है कि :

कबीरा मन निर्मल भयो जैसे गंगा नीर ।
पीछे पीछे हरि फिरें कहत कबीर कबीर ॥

अपेक्षाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ ही मन को मलिन करती हैं । अपेक्षारहित, वासनारहित जीवन में ही गंगाजल की तरह मन निर्मल होता है । निर्मल मनवाले को भगवान अति प्रेम करते हैं ।

अपेक्षाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ ही मन को मलिन करती हैं । अपेक्षारहित, वासनारहित जीवन में ही गंगाजल की तरह मन निर्मल होता है । निर्मल मनवाले भक्त को, योगी को, ज्ञानी को, भगवान अति प्रेम करते हैं । अपेक्षारहित अवस्था में वैराग्य पनपता है, योगी का योग फलता है, भक्त की भक्ति फलती है, साधक की साधना फलती है, ज्ञानी का ज्ञान फलता है । अपेक्षाओं का त्याग ही सुन्दर समाज का निर्माण करता है, सुन्दर जीवन का निर्माण होता है, सुन्दर बुद्धि का प्राकट्य होता है, आन्तरिक सुन्दरता प्रकट होती है, चित्त शान्त होता है, आन्तरिक सामर्थ्य प्रकट होता है ।

'इतना मिलना चाहिये... इतना खाना चाहिये... ऐसा तो रहना ही चाहिये... ऐसा तो करना ही चाहिये... इतना तो होना ही चाहिये...' ऐसा विभिन्न प्रकार का आग्रह ही दुःखदायी है । नवग्रहों की अपेक्षा आग्रह ज्यादा खतरनाक है, क्योंकि अपेक्षाओं के कारण ही मनुष्य नरक में जाता है । सत्पुरुषों से, सद्विचारों से, सत्साहित्य से तथा सत्शास्त्रों से दूर होता जाता है, छोटी-छोटी इच्छाओं व वासनाओं में ही उलझा रहता है । इन इच्छाओं, वासनाओं, अपेक्षाओं व आकांक्षाओं से ऊपर उठने की युक्ति है कि हम शुभ इच्छा यानी भगवत्तत्त्व में स्थित होने की इच्छा को तीव्र करते जायँ । खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, काम करते, आते-जाते, चलते-फिरते भगवन्नाम व अपने नित्य शाश्वत् स्वरूप का चिंतन करें तो इन सभी तुच्छ वासनाओं से मुक्त हो जाएँगे । सहज मुक्ति की दूसरी युक्ति यह है कि जो भी परिस्थिति आपके सामने आ खड़ी होती है, उसे प्रभु की कृपा का प्रसाद समझकर प्रभु को धन्यवाद देते हुए स्वीकार कर लें । भगवद्कृपा की प्रतीक्षा मत करो बल्कि जो भी स्थिति बनी है उसकी कृपा की समीक्षा करो । समीक्षा करने की कला सीखो ।

सहज मुक्ति की युक्ति : जो भी परिस्थिति आपके सामने आ खड़ी होती है, उसे प्रभु की कृपा का प्रसाद समझकर प्रभु को धन्यवाद देते हुए स्वीकार कर लें ।

'हे प्रभु ! तू नचाना चाहता है तो मैं नाच लेता हूँ। तू रुलाना चाहता है तो मैं रो लेता हूँ । तू हँसाना चाहता है तो मैं हँस लेता हूँ । तू खिलाना चाहता है तो खा लेता हूँ । तू अभाव में रखना चाहता है तो मैं अभाव में रह लेता हूँ । हे भगवन् !

तेरे फूलों से भी प्यार तेरे काँटों से भी प्यार ।
चाहे सुख दे या दुःख हमें दोनों है स्वीकार ॥

अपेक्षारहित होने की तीसरी युक्ति है अपने दुर्गुणों व गलतियों को याद करके वर्त्तमान का अनादर मत करो । अपने को अच्छा बनाने के लिये हम अपेक्षा करते हैं कि हम सद्‌गुणी बनें । 'यह दुर्गुण मुझमें कैसे आ गया ? यह गलती मुझसे कैसे हो गई ?' इस प्रकार जो दुर्गुण हो गये हैं उनका भी चिन्तन मत करो और जो सद्‌गुण हैं उनका भी चिन्तन मत करो क्योंकि गुण तो माया के हैं चाहे वे दुर्गुण हों या सद्‌गुण हों । हमें तो माया के पार, गुणातीत अवस्था में पहुँचना है, इसलिए किसी भी प्रकार का आग्रह छोड़ दो । जीवन में कोई हठ नहीं, कोई पकड़ नहीं, कोई मान्यताएँ नहीं, कोई आकांक्षा - अपेक्षा नहीं, कोई जिद्द नहीं । जीवन में जो भी परिस्थिति आये, मान आये, सुख आये तो चिन्तन करो : 'प्रभु मुझे प्रेरणा देने के लिए मान दे रहे हैं, सफलता दे रहे हैं, सुविधा दे रहे हैं । हे प्रभु ! तेरी असीम कृपा को धन्य हो !'

अपने दुर्गुणों व गलतियों को याद करके वर्त्तमान का अनादर मत करो ।

जप-ध्यान से मन पवित्र, बुद्धि पवित्र, विचार पवित्र । पवित्र विचारों से पवित्र कर्म होते हैं । पवित्र कर्मों के पवित्र फल होते हैं । पवित्रों में भी पवित्र परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।

जीवन में जब अपमान आये, दुःख आये, असफलता आये, विरोध आये, विपत्ति आये तब भी चिन्तन करो : 'हे दयालु प्रभु ! तू मुझे विपरीत परिस्थितियाँ देकर मेरी आसक्ति-ममता छुड़ा रहा है । मेरी परीक्षा लेकर मेरा साहस व सामर्थ्य बढ़ा रहा है । हे प्रभु ! तेरी कृपा की सदा जय हो !' ऐसी समझ यदि हमने विकसित कर ली तो फिर कोई भी परिस्थिति हमें हिला नहीं सकेगी और हम निर्मल मन से आत्मदेव में स्थित होने का सामर्थ्य पाएँगे ।

साधक ध्यान-भजन-कीर्तन तो करे, साथ ही स्वभाव बदलने के लिए भी सतत जागृत रहे । स्वभाव में माधुर्य नहीं आया तो मुक्ति से आप दूर होते चले जायेंगे । ध्यान-भजन में बरकत नहीं आयेगी ।

भगवन्नाम के जप-ध्यान से मन पवित्र होता है, बुद्धि पवित्र होती है, विचार पवित्र होते हैं । पवित्र विचारों से पवित्र कर्म होते हैं । पवित्र कर्मों के पवित्र फल होते हैं । पवित्रों में भी पवित्र परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार होता है, मुक्ति की अनुभूति होती है ।

मुक्ति की युक्ति यही है कि साधक ध्यान-भजन-कीर्तन तो करे, साथ ही स्वभाव बदलने के लिए भी सतत जागृत रहे । स्वभाव जिद्दी है, मन बुरी आदतों में फँसा है, व्यसन छूटता नहीं है, परिस्थितियों, वस्तुओं व व्यक्तियों से राग-द्वेष छूटता नहीं है, चित्त छोटी-छोटी परिस्थितियों से प्रभावित हो जाता है ।

जप-ध्यान-भजन में मन लगता नहीं है, स्वभाव में माधुर्य नहीं आया तो मुक्ति से आप दूर होते चले जायेंगे । ध्यान-भजन में बरकत भी नहीं आयेगी, इसलिए स्वभाव बदलने के प्रति सदा जागृत रहें । अपेक्षारहित जिनका जीवन हो जाता है, उनके संकल्प सत्य हो जाते हैं । भगवान को, अवतारों को, संतों को कोई अपेक्षा नहीं होती । श्रीकृष्ण के जीवन में देखो : वे प्रेम भी उतना ही करते हैं और शासन भी उतना ही करते हैं । हमें शंका हो सकती है कि जो प्रेम करेगा वह शासन कैसे करेगा ? जो दयालु होता है वह न्याय नहीं कर सकता । न्यायाधीश है और दयालु है तो वह फाँसी की सजा कैसे देगा ? ...और सजा देगा तो दयालु कैसे ? ईश्वर व ईश्वरत्व को प्राप्त हुए सद्‌गुरु दोनों में विपरीत गुण एक साथ पाये जाते हैं । उनमें प्रेम के साथ न्याय होगा, न्याय के साथ प्रेम होगा । यदि आप ईश्वर व गुरु से इमानदारी से प्यार करते हैं तो उनके लिये आपके हृदय से धन्यवाद के अलावा कुछ नहीं निकलेगा । यदि आपके अंतःकरण से

फरियाद निकलती है तो आप समझ लीजिए कि प्यार में कहीं कोई कमी है । जहाँ सच्चा प्रेम होता है वहाँ दोषदर्शन नहीं होता । हमको सृष्टिकर्त्ता से प्रेम नहीं है इसलिए हम कहते रहते हैं : 'भगवान ने ऐसा क्यों किया ? भगवान ने अमुक के साथ बुरा किया... उसका जवान इकलौता बेटा ले लिया... यह व्यक्ति कितना इमानदार है परन्तु भगवान ने इसे कितनी गरीबी दी है !' यह सब फरियाद प्रभु में पूर्ण समर्पण के अभाव के कारण है । वास्तव में प्रभु जो कुछ करता है वह अच्छा ही करता है क्योंकि वह सबसे अधिक हमारा हितैषी है । उससे अधिक हितैषी हमारा कहीं कभी कोई हो ही नहीं सकता । वह सदा हमारे साथ है, कभी एक क्षण के लिये भी हमसे अलग नहीं हो सकता इसलिये जीवन जितना अपेक्षारहित बनाओगे उतना ही प्रभु को आप अपने निकट अनुभव करोगे ।

ईश्वर व ईश्वरत्व को प्राप्त हुए सद्गुरु दोनों में विपरीत गुण एक साथ पाये जाते हैं । उनमें प्रेम के साथ न्याय होगा, न्याय के साथ प्रेम होगा ।

गुरु, भगवान व शास्त्रों के वचनों को समझने से हमें परम सुख मिलता है । वस्तुओं तथा सुविधाओं की कमी के कारण हम दुःखी नहीं हैं अपितु ज्ञान व समझ की कमी के कारण हम दुःखी हैं । अपेक्षाएँ जितनी बढ़ती जाएँगी, हम उतने ही दुःखी होते जाएँगे । अपेक्षाएँ जितनी कम होती जाएँगी, हम उतने ही सुखी होंगे और अपेक्षाएँ नहीं हैं तो हम परम सुख में स्थित हो जाएँगे । हर इन्सान के पास पूरा का पूरा परम सुख पड़ा है परन्तु हमारे बाह्य वस्तुओं के आकर्षण की नासमझी ने हमको इस परम सुख से दूर कर रखा है । इसलिये अप्राप्त का चिन्तन छोड़ो तो ही प्राप्त का अनुभव होगा । अप्राप्त का चिन्तन छोड़ने का सरल तरीका है जो भी आपके पास नश्वर वस्तुएँ, सेवाएँ उपलब्ध हैं उसका सदुपयोग करो । इस तरह अप्राप्त का चिन्तन छूटते ही व्यक्ति सदा प्राप्त आत्मा में टिक जाता है । आत्मा ही पूर्ण आनन्दस्वरूप है, पूर्ण सुखस्वरूप है और आत्मा के सिवाय जो कुछ मिलेगा वह बिछुड़ेगा ही । जबकि एक बार आत्मा का ज्ञान हो जाए तो वह कभी नहीं जाता । केवल आत्मसुख ही शाश्वत है । अहंकार का सुख, धन का सुख, मान्यताओं का सुख, सुविधाओं का सुख, ये सब नश्वर हैं । ये सब हमारी नासमझी के कारण हमें वासनाओं की ओर ढकेलते हैं और वासनाओं के घटीयंत्र में जीव कई योनियों में जन्म-जन्मांतर तक भटकता रहता है । मनुष्य सुख के लिये जितना-जितना नश्वर पदार्थों का आधार लेता है, उतना ही वह उन वस्तुओं से बँध जाता है । नश्वर से बँधने की आदत हमारी सदियों पुरानी है । उसको मिटाने के लिए जरा मेहनत करनी पड़ेगी । सत्पुरुषों व सत्शास्त्रों का आधार लेना होगा । लाखों जन्मों से हम इन्द्रियों के गुलाम बनते चले आये हैं । जिस तरह लाखों वर्षों का अंधकार प्रकाश होते ही गायब हो जाता है, उसी तरह लाखों जन्मों के बंधन सद्गुरु के सान्निध्य से, उनके द्वारा दिये गये ज्ञान को पचाने से, तत्परता के साथ साधना करने से कट सकते हैं । लाखों जन्मों का काम इसी एक जन्म में किया जा सकता है । जीते-जी मुक्ति की अनुभूति की जा सकती है । इसलिये, आपके पास जो समय है, जवानी है, सामर्थ्य है, बुद्धि है, साधन है, वे काफी हैं । वर्त्तमान में उनका सदुपयोग करो तो सहज ही भूत व भविष्य का चिन्तन छूट जायेगा । जितनी तत्परता से इस काम को करोगे उतना ही शीघ्र आत्मसुख की झलकियाँ प्राप्त होने लगेंगी । आपके हृदय में आनन्द का अद्भुत खजाना है । जब भी गरदन झुका ली और मुलाकात कर ली । मुलाकात करने की कला सद्गुरु के सान्निध्य से, उनके वचनों से, उनकी कृपा से सीख लो । वर्त्तमान की एक-एक क्षण को सदुपयोग में लगा दो तो अन्दर के आनन्द का अनुभव हुए बिना नहीं रह सकता ।

वस्तुओं तथा सुविधाओं की कमी के कारण हम दुःखी नहीं हैं अपितु ज्ञान व समझ की कमी के कारण हम दुःखी हैं । अपेक्षाएँ जितनी बढ़ती जाएँगी हम उतने ही दुःखी होते जाएँगे ।

❀

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

साधना की रक्षा करो

श्री रामकृष्ण परमहंस के श्रीचरणों में केशवचंद्र सेन प्रार्थना किया करते थे : ''ठाकुर ! एक दिन मेरे घर को पावन करने पधारिये ।''

'हाँ-ना' करते-करते एक दिन श्री रामकृष्ण परमहंस राजी हो गये । ताँगे पर बैठकर केशवचंद्र सेन के साथ उनके घर की ओर चल पड़े । रास्ते में उन्हें प्यास लगी तो बोले : ''केशव ! पानी ।''

केशवचंद्र : ''ठाकुर ! अभी घर आया ।''

थोड़ी देर बाद पुनः श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा : ''केशव ! पानी ।''

केशवचंद्र पुनः बोले : ''ठाकुर ! अभी घर आया ।''

ताँगे को दौड़ाते - भगाते घर पहुँचे। जैसे ही ताँगे से दोनों उतरे कि केशवचंद्र सेन ने नौकर से कहा : ''जल्दी से पानी लाओ ।''

नौकर ने चमकते हुए जग में पानी भरा और श्री रामकृष्ण परमहंस के सामने रख दिया। श्री रामकृष्ण ने नौकर की दृष्टि देखी, पानी की ओर निहारा और मुँह घुमा लिया ।

केशवचंद्र सेन ने नौकर को दुबारा जग को माँज-धोकर पानी लाने को कहा । दुबारा पानी लाने पर पुनः श्री रामकृष्ण ने मुँह घुमा लिया ।

केशवचंद्र ने तीसरी बार पानी मँगवाया । श्री रामकृष्ण परमहंस उठकर ताँगे पर बैठ गये और बोले : ''मुझे दक्षिणेश्वर छोड़कर आओ ।''

गुरु घर पर आयें और खाली हाथ जायें यह तो बहुत बड़ा अपशुकन है । फिर यहाँ तो गुरु स्वयं ही पानी माँग रहे थे । किन्तु पानी देने पर मुँह घुमाकर प्यासे ही उठ गये ! केशवचंद्र सेन यह देखकर बहुत दुःखी हुए ।

कुछ दिनों के बाद मौका पाकर केशवचंद्र सेन ने पूछ ही लिया : ''ठाकुर उस दिन आप पानी पिये बिना ही घर से चल दिये थे, उसका कारण क्या था ?''

ठाकुर : ''केशव ! घर जाकर नौकर को डाँटना मत, नौकरी से निकालना मत । पानी तो साफ-सुथरा था किन्तु उसकी दृष्टि ठीक न थी, उसकी आँखों से निकलनेवाले परमाणु विकारी थे। हीन 'औरा' निकल रही थी। मैं प्यासा मरना कबूल करूँगा लेकिन हृदय खराब करना कभी कबूल नहीं करूँगा ।''

जिन महापुरुषों को अपने वास्तविक तत्त्व की कद्र है वे स्थूल जगत का इतना कष्ट सहकर भी दिव्य जगत का आदर करते हैं । 'जो आया सो खा लिया... जो आया सो पी लिया... जिस-किसीके साथ उठे-बैठे... स्पर्श किया...'- इन सबसे जप-ध्यान में तो अरुचि होती ही है, साथ ही विषय-विकारों का आकर्षण बढ़ता जाता है और पतन होते देर नहीं लगती । अतः यदि आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होना है तो साधक को विशेष

''मैं प्यासा मरना कबूल करूँगा लेकिन हृदय खराब करना कभी कबूल नहीं करूँगा ।'' जिन महापुरुषों को अपने वास्तविक तत्त्व की कद्र है वे स्थूल जगत का कष्ट सहकर भी दिव्य जगत का आदर करते हैं ।

''प्रभो ! मुझे कुछ चाहिए भी नहीं और कुछ होना भी नहीं है । जो है, जैसा है, प्रारब्ध बीत रहा है । धन में या धन के त्याग में, वस्त्र और आभूषणों में सुख नहीं है । सुख तो है समता के सिंहासन पर ।

सावधानी रखने की जरूरत है ।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः ।

कहावत भी है कि : **अन्न बिगड़े तो मन बिगड़े । पानी बिगड़े तो वाणी बिगड़े ।**

अतः खान-पान व स्पर्शा-स्पर्शी में शुद्धि का ख्याल रखें ।

❀

सच्ची शांति के अधिकारी

हमारा अधिकांश समय कुछ पाने, उसे संभालने और 'वह नष्ट न हो जाए' इसकी चिन्ता और मेहनत में ही नष्ट हो जाता है जबकि वास्तविकता तो यह है कि इस क्षणभंगुर मृत्युलोक में ऐसी कोई भी वस्तु और संबंध नहीं है जो सदा बना रहे । हम जो पाना चाहते हैं वह नश्वर है । हम जिसे संभालना चाहते हैं, वह पल-प्रतिपल नष्ट होता जा रहा है लेकिन विवेक के अभाव में हम अपना अमूल्य मानव देह और समय व्यर्थ गँवा देते हैं और आखिरकार कुछ भी हाथ नहीं लगता । एक परमात्मा के शाश्वत संबंध को छोड़कर कोई भी संबंध सदा नहीं रहता । लेकिन अभागी इच्छा-वासनाओं ने हमें कभी सच्ची शांति का अधिकारी नहीं बनने दिया ।

बड़े में बड़ा भगवान तो तुम्हारे इस शरीर को सत्ता देनेवाला तुम्हारा आत्मा है और असल में वही तुम हो । अपने आपसे पंचमहाभूत का नश्वर शरीर मत मानो । शांत चित्त से अपने भीतर गोता मारो, चिन्तन करो अपने वास्तविक स्वरूप का ।

बुद्ध एक विशाल मठ में पाँच मास तक ठहरे हुए थे । गाँव के लोग शाम के समय सत्संग सुनने आते और सत्संग पूरा होता तो लोग बुद्ध के समीप आ जाते और उनके समक्ष अपनी समस्याएँ रखते । किसीको बेटा चाहिए तो किसीको धन्धा चाहिए, किसीको रोग का इलाज चाहिए तो किसीको शत्रु का उपाय चाहिए ।

एक बार भिक्षु आनंद ने पूछा :

''भगवन् ! यहाँ श्रीमान लोग भी आते हैं, मध्यम वर्ग के लोग भी आते हैं और छोटे-छोटे लोग भी आते हैं । सब दुःखी ही दुःखी । इनमें कोई सुखी होगा क्या ?''

बुद्ध : ''हाँ, एक आदमी सुखी है ।''

आनंद : ''बताइये, कौन है वह ?''

बुद्ध : ''जो आकर पीछे चुपचाप बैठ जाता है और शान्ति से सुनकर चला जाता है । कल भी आएगा । उसकी ओर संकेत करके बता दूँगा ।''

दूसरे दिन बुद्ध ने इशारे से बताया । आनंद विस्मित होकर बोला : ''भन्ते ! यह तो मजदूर है । कपड़े का ठिकाना नहीं और झोंपड़ी में रहता है । यह सुखी कैसे ?''

बुद्ध : ''आनंद ! अब तू ही देख लेना ।''

बुद्ध ने सब लोगों से पूछा कि आपको क्या चाहिए ? सभी ने अपनी-अपनी चाह बतायी । किसीको धन, किसीको सत्ता तो किसीको सौन्दर्य चाहिए था । जिसके पास धन था, उसको शांति चाहिए । सभी किसी-न-किसी परेशानी में ग्रस्त थे । आखिर में उस मजदूर को बुलाकर पूछा गया : ''तेरे को क्या चाहिए ? क्या होना है तुझे ?''

मजदूर प्रणाम करते हुए बोला : ''प्रभो ! मुझे कुछ चाहिए भी नहीं और कुछ होना भी नहीं है । जो है, जैसा है, प्रारब्ध बीत रहा है । धन में या धन के त्याग में, वस्त्र और आभूषणों में सुख नहीं है । सुख तो है समता के सिंहासन पर और हे भन्ते ! वह आपकी कृपा से मुझे प्राप्त हो रहा है ।''

'मुझे यह पाना है... यह करना है...यह बनना है...' ऐसी खटपट जिसकी दूर हो गई हो वह अपने राम में आराम पा लेता है । वह सच्ची शांति का अधिकारी हो जाता है । आज आरोग्यता पा लेना दुर्लभ नहीं, सत्ता पा लेना दुर्लभ नहीं, साम्राज्य पा लेना दुर्लभ नहीं, बुद्धिमत्ता पा लेना दुर्लभ नहीं । दुर्लभ तो वे हैं जो कुछ पाकर सुखी हो[illegible]की हमारी मान्यताएँ छुड़ाकर सत् का बोध करा दें, सच्ची शांति का अधिकारी बना

दें । ऐसे ब्रह्मज्ञानी महापुरुष दुर्लभ हैं ।

❀

सबसे बड़ा देव

हे मनुष्य ! तुम कब तक अपनेको तुच्छ शरीर मानते रहोगे ? हाड़-मांस का पिंजड़ा तुम नहीं हो । अपने मूल स्वरूप को पहचानने की कृपा करो । वास्तव में तुम वह चीज हो जिसका वर्णन करना अशक्य है । पंचमहाभूत से बना और उसमें ही लीन हो जानेवाला शरीर तुम नहीं हो वरन् इस शरीर को सत्ता देनेवाले सर्वसत्ताधीश परमात्मा तुम स्वयं हो । जैसे कंगन, हार, बाली आदि अलग-अलग आकृतियाँ दिखती हैं लेकिन वे सब हैं तो सोना ही । ऐसे ही आकाश, सूर्य, चंद्र, तारे, नक्षत्र, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि भासित होते हैं भिन्न-भिन्न परंतु उन सबमें सत्ता उस एक ही परब्रह्म परमात्मा की है । जो खुद ही खुदा है, जो रोम-रोम में रमनेवाला राम है वह तुम्हारा ही आत्मा बन बैठा है । अपने आप को पहचान लो, भाई !

प्राचीन समय की बात है :

देवेन्द्रप्रसाद नाम का एक राजा साधु-संतों में खूब श्रद्धा रखता था । अपने राज्य में जो कोई छोटे-बड़े साधु आते उनकी सेवा में वह पहुँच जाता था । एक बार एक पहुँचे हुए महापुरुष घूमते-घामते आये देवेन्द्रप्रसाद के राज्य में । कई साधु संन्यासियों की सेवा करते-करते राजा को आखिर सच्चे ब्रह्मज्ञानी संत मिल गये ।

राज्य में नदी के किनारे पर एक कुटिया बनाकर ठहरे हुए उन महापुरुष को मिलने के लिए देवेन्द्रप्रसाद गया । उनके दर्शन करने मात्र से राजा एक अलौकिक शांति का अनुभव करने लगा । वह बोला :

''बाबाजी ! आज तक मैंने कई तीर्थ-यात्राएँ कीं, कई साधु-संन्यासियों को भोजन करवाया किन्तु आज आपके दर्शनमात्र से चित्त परम शांति का अनुभव कर रहा है । मुझे ऐसा महसूस होता है कि आज तक मैं जिनकी खोज में था, वे मुझे मिल गये हैं । बाबाजी मेरे उद्धार के लिए आप कुछ उपदेश दीजिये । मुझे कौन-से देव की पूजा-अर्चना करनी चाहिए ?''

संत तो आत्मसाक्षात्कारी महापुरुष थे । उन्होंने कह दिया :

''किसी और देवी-देवता की पूजा क्यों करना ? तुम ही सब से बड़े देव हो ।''

राजा देवेन्द्र संत की गहरी सच्चाई को समझ न पाया । अपने आत्म-स्वरूप को न जानकर शरीर को और शरीर के संबंधों को 'मैं' और 'मेरे' मानने की गलती कर बैठता है इन्सान, इसीलिए अपने को दीन-हीन, पापी-लाचार मान बैठता है ।

राजा : ''नहीं नहीं... मैं तो एक छोटा-सा राजा हूँ... एक संसारी जीव... भला मैं सबसे बड़ा देव कैसे ?''

संत समझ गये कि राजा का अज्ञान दूर नहीं हुआ है इसीलिए अपने को आत्मा न मानकर तुच्छ संसारी जीव मान रहा है ।

संत ने सोचा कि इसे उपदेश देने से बात इतनी समझ में नहीं आएगी इसलिए वह अपने ही अनुभव से समझ ले ऐसा कुछ करना पड़ेगा । उन्होंने अपने थैले में से नर्मदेश्वर की मूर्ति निकालकर देते हुए कहा :

''ये नर्मदेश्वर भगवान हैं । इनकी सेवा-पूजा करना ।'' संत ने सेवा-पूजा की विधि बता दी और कहा :

''नर्मदेश्वर की सेवा-पूजा करते-करते फिर थोड़ी देर ध्यान करना । ध्यान करते हुए तुम्हें यदि दूसरे बड़े देव दिखें तो फिर उनकी पूजा करने लगना । फिर उनसे भी बड़े देव दिखें तो उनकी पूजा करने लगना । ऐसे करते-करते अंत में तुम्हें सब से बड़े देव मिल जाएँगे । फिर तुम उनकी पूजा करना ।''

वे महापुरुष कोई साधारण कथाकार न थे, परंतु योगी, मस्त फकीर, सत्यस्वरूप ईश्वर में विश्रांति पाये हुए संत थे । सच्चे संत का वचन देर-सबेर सत्य होकर ही रहता है ।

राजा खूब श्रद्धा-भक्ति से नर्मदेश्वर की सेवा-पूजा करने लगा । रोज कुमकुम-अक्षत चढ़ाता, बिलिपत्र

चढ़ाता और 'ॐ नमः शिवाय' का मंत्रोच्चार करता । थोड़ा ध्यान करता । एक-दो दिन में उसने देखा कि ध्यान में आँखें बंद करने पर चूहा चावल खा जाता है । राजा ने सोचा : 'ये नर्मदेश्वर से तो चूहा बड़ा है । वह उन पर चढ़ाये हुए चावल खा जाता है फिर भी देव कुछ नहीं कर पाते हैं ।

अब राजा ने उस चूहे को एक सोने के पिंजड़े में बंद करके उसकी पूजा करना शुरू कर दिया ।

कहानी कहती है कि कुछ ही दिनों में बिल्ली को पिंजड़े के आसपास मँडराते देखकर डर के मारे चूहा पिंजड़ा काटकर भाग गया । यह देखकर देवेन्द्रप्रसाद को पक्का विश्वास हो गया कि चूहा तो बिल्ली से डरता है । चूहे से बड़ी तो बिल्ली है । अब वह बिल्ली माता की पूजा करने लगा। रोज श्रद्धा से आरती उतारता कि :

जय जय माँ बिल्ली...

जहाँ बिल्ली होती है वहाँ कुत्ता तो आ ही जाता है । कुत्ते की भौंकने की आवाज सुनने से बिल्ली दूम दबाकर भागी । अब राजा का देवस्थान कत्ते ने लिया ।

एक बार रानी कुछ काम से बाहर गई थी । तब कुत्ते ने रसोईघर में घुसकर सब भोजन बिगाड़ दिया । रानी ने आते ही डंडा हाथ में लेकर कुत्ते को मार भगाया । राजा को हुआ कि इस कुत्ते से बड़ी मेरी रानी है । अब से में उसका ही ध्यान करूँगा ।

रानी को देवीमाता समझकर राजा उसकी पूजा करने लगा । एक दिन रानी से कुछ गलती हो गई जिस पर राजा रानी को खूब डाँटने लगा । राजा के गुस्से होने पर रानी घबराई । वह कहने लगी :

''मुझसे भूल हो गई स्वामी ! मुझे क्षमा कीजिये ! दूसरी बार ऐसी गलती नहीं करूँगी ।''

इस प्रकार रानी का दबा-दबा-सा व्यवहार देखकर राजा सोचने लगा : 'अरे ! जिसे मैं सबसे बड़ी देवी मानता था वह तो मेरी एक डाँट से मेरे आगे झुक गयी ! इसका मतलब यह कि सबसे बड़ा, सबसे महान देव तो मैं खुद ही हूँ ।'

राजा ने अपने आनन्दस्वरूप को पहचानने के लिए किसी बाहर के देवी-देवता की उपासना न करके अपने ही भीतर झाँकने का प्रयत्न किया । राजा जा पहुँचा उस संत महापुरुष के चरणों में ।

संत ने पूछा : ''राजन् ! सबसे बड़े देव को खोज लिया ?''

''जी, सबसे बड़ा भगवान में खुद ही हूँ ।''

संत : ''जिसे तुम बड़ा मानते हो वह तो तुम्हारा शरीर है जो एक दिन अग्नि में स्वाहा हो जाएगा । बड़े में बड़ा भगवान तो तुम्हारे इस शरीर को सत्ता देनेवाला तुम्हारा आत्मा है और असल में वही तुम हो । राजन् ! अपने आपको पंचमहाभूत का नश्वर शरीर मत मानो । शांत चित्त से अपने भीतर गोता मारो, चिन्तन करो अपने वास्तविक स्वरूप का । 'मैं कौन हूँ ?' उसे ढूँढ निकालो । अपने आत्मदेव को जान लो और सुख-दुःख, स्वर्ग-नर्क से परे, मुक्तात्मा हो जाओ । फिर तो बेशक तुम ही सबसे बड़े भगवान होगे ।''

शोधी ले शोधी ले... निज घरमां पेख...
बहार नहि मले ।

बंदगी का था कसूर बंदा मुझे बना दिया ।
खुद से था बेखबर तभी तो सिर झुका दिया ॥
वो थे न मुझसे दूर न मैं उनसे दूर था ।
आता न था नजर तो नजर का कसूर था ॥

जो मनुष्य अपने आपको शरीर मानता है, 'मैं पापी हूँ... दीन-दुःखी हूँ...' - ऐसा मानता है वह खुद ही अपने-आपको पाप में गिराता है, दीन-दुःखी बनाता है । उसने अपने आप से ही शत्रुता मोल रखी है और चौरासी लाख जन्म का दुःख भुगतता है । अपने निज स्वरूप को पहचान ले भाई ! सारे ब्रह्माण्ड को चलानेवाले ब्रह्म स्वयं तुम ही हो । नाहक अपने वास्तविक स्वरूप से बेखबर रह रहे हो । अपने आत्मपद में प्रतिष्ठित हो जाओ और सदा के लिए मुक्त हो जाओ...

ॐ आनन्द... ॐ प्रसन्नता... ॐ आनन्द...

मन में अगर गुरु के विषय में कुविचार आये तो स्वयं ही अपने आपको दण्ड दो । *- स्वामी शिवानंदजी*

मन से ही बँधन है

– पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।

कहा गया है कि मन ही कारण है हमारे बंधन और मोक्ष का । मन से जैसे संकल्प उठते हैं वैसा भविष्य में होता जाता है । इसलिए हमेशा मन से शुभ संकल्प ही करने चाहिए । झूठ-मूठ में भी किये गये शुभ संकल्प धीरे-धीरे पक्के होते जाते हैं और सत्य होने लगते हैं । सदैव अच्छे विचार करने चाहिए, अच्छा बोलना चाहिए, बुरे खेल नहीं खेलने चाहिए इत्यादि तो हम बचपन से हमारी माँ के पास से सीखते आये हैं । कभी-कभी बच्चे हँसी-मजाक में 'भिखमंगा-भिखमंगा' खेलते समय भिखारी का अभिनय करके बोलते हैं : 'एक पैसा दे दो, भगवान के नाते इस अपंग को... इस लाचार को कोई एक रोटी दिला दो...' तब माँ बच्चे को डाँटती है कि : ''खेल-खेल में भी ऐसा नहीं बोलते । कोई दूसरा अच्छावाला खेल खेलो ।''

मन से जैसा सोचते हैं, करते हैं, चाहे नकल भी क्यों न करते हों फिर भी नकल भी असलियत में बदलती जाती है । 'मेरा क्या होगा ?' ऐसा जरा-सा भी चिंतन तुम्हारा जीवन परेशानियों से भर देता है । 'मैं बीमार हूँ' ऐसा चिंतन अच्छे-भले हट्टेकट्टे आदमी में भी कमजोरी ला देता है । ठीक इसी तरह ध्यान में बैठने की नकल से भी हकीकत में मन शांत होता जाता है । रोज बेमन से की गई माला भी एक दिन जरूर मन से होने लगती है ।

> *सब की सब मान्यताएँ, सारे बँधन मन की कल्पना मात्र है । अज्ञान से, धारणाओं से हमारा चिदाभास बँध गया है । उसे खोलने लगो... मिटाते जाओ जिससे हमारा मन भी सीधा परमात्मा के पास दौड़कर जाए ।*

कुछ सौदागर खच्चरों को लेकर एक गाँव से दूसरे गाँव घूमते थे और सौदा करते थे । एक रात को किसी दूसरे गाँव में खच्चर बाँधने की रस्सियाँ भूल जाने पर पड़ाव पर सौदागर ने अपने नौकर से कहा :

''खच्चरों को रस्सी से बाँधने का एहसास करा देना ।''

नौकर ने खच्चरों के अगले पैर के इर्दगिर्द रस्सी बाँधने का ऐसा अभिनय किया ताकि खच्चरों को मानसिक् रूप से लगे कि वे बाँधे गये हैं ।

दूसरे दिन सुबह जब सौदागर ने खच्चरों को छोड़ने को कहा तब नौकर के कई डंडे लगने पर भी वे आगे नहीं चल रहे थे । नौकर ने सौदागर से आकर अपनी परेशानी का बयान करते हुए कहा :

''मालिक ! आज डंडे की मार खाने पर भी खच्चर चल नहीं रहे हैं । वे सब अपने पिछले पैरों को घुमाते रहते हैं लेकिन अगले पैरों को तो हिलाते भी नहीं ।''

सौदागर ने हँसकर कहा : ''तुमने उनको छोड़ा ही नहीं है तो वे बेचारे कैसे चलें ?''

नौकर : ''नहीं हजूर ! ऐसा तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि उन्हें तो बाँधा ही नहीं गया था । वे सब तो छुटे हुए ही हैं ।''

सौदागर : ''कल रात रस्सी से खच्चरों को बाँधा नहीं गया था यह बात सत्य है लेकिन वे खुले भी नहीं हैं । तुमने उनको रस्सी से बाँधने का अभिनय करके उन्हें एहसास कराया था कि अब वे बँध गये हैं । अब तुम फिर से उनके पैरों से रस्सी खोलने का अभिनय करके उन्हें एहसास कराओ कि उनको

(शेष पृष्ठ २६ पर)

सच्चे सुख की खोज

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

कबीरजी ने कहा है :

भटक मूँआ भेदू बिना पावे कौन उपाय ।
खोजत-खोजत जुग गये पाव कोस घर आय ॥

आत्मतत्त्व के रहस्य को जाननेवाले भेदू पुरुषों के सान्निध्य बिना जीव बेचारा कितने ही जन्मों से विषय-विकार के सुख में, अहंकार के सुख में, भविष्य के सुख में और स्वर्ग के सुख में उलझ-उलझकर भटक रहा है । फिर भी आज तक उसे कहीं भी वास्तविक सुख नहीं मिला और न ही वह स्थिर हो सका ।

आत्मज्ञानी महापुरुष के दर्शन और सत्संग द्वारा दृढ़ निश्चय करके साधन-भजन किया जाए तो सच्चे सुख की अनुभूति हो जाएगी ।

मनुष्यमात्र की माँग है आनंद, मुक्ति, नित्य सुख और अमरता की । मनुष्य धन-संपत्ति क्यों इकट्ठी करता है ?

सुख के लिए ।

नौकरी क्यों करता है ?

सुख के लिए ।

वह तंदुरुस्ती क्यों चाहता है ?

सुख के लिए ।

चोर चोरी क्यों करता है ?

सुख के लिए ।

मनुष्य मंदिर में भगवान के दर्शन करने क्यों जाता है ?

सुख के लिए ।

आप जो कुछ मत, पंथ, देवी-देवता, गुरु अथवा धन-वैभव, सामाजिक संबंध चाहते हो, मानते हो उसकी गहराई में भी सुख की ही इच्छा होती है । जीवमात्र की प्रत्येक प्रवृत्ति सुख के लिए होती है किंतु फिर भी आज तक उसे सच्चा सुख नहीं मिला ।

सत्त्वगुणी मनुष्य को भी तब तक सच्चा, शाश्वत् सुख नहीं मिलता, जब तक वह गुणातीत नहीं बनता ।

एक मियाँभाई मृत्युशैया पर पड़े थे । उन्होंने मुल्लाजी को बुलवाया और कहा : ''यह दक्षिणा लीजिए और मेरे लिए खुदा से दुआ माँगिए ।'' फिर वह मियाँभाई खुद आकाश की ओर देखकर खुदा से दुआ माँगने लगा :

''हे खुदाताला ! मैं तुम्हारे कहने के मुताबिक कुछ न कर सका, मुझे माफ करना । मैं जैसा भी हूँ, तुम्हारा हूँ । मेरी रक्षा करना । मैं तुम्हारी शरण में हूँ ।''

उसके बाद मियाँभाई ने दूसरी प्रार्थना शुरू की : ''हे शैतान ! मैं तुझसे दोस्ती भी न निभा सका । मुझे तू माफ करना । मैं जैसा भी हूँ, तेरी शरण में हूँ ।''

मुल्लाजी : ''यह क्या बकवास कर रहा है ?''

मियाँभाई : ''मुल्लाजी ! आप अपनी दक्षिणा लेकर जाइये । मरना तो मुझे है । क्या पता मैं किसके हाथ में जाऊँगा ? खुदाताला के पास जाऊँगा कि शैतान के पास जाऊँगा इसकी मुझे खबर नहीं है, इसलिए मैं दोनों से प्रार्थना कर रहा हूँ ।''

आज के मनुष्य की ऐसी दयनीय दशा है । मनुष्य को पता ही नहीं है कि मृत्यु के बाद भगवान की शरण जाएँगे या फिर से जन्म-मरण के चक्र में ही भटकेंगे क्योंकि साधना, संयम सदाचार द्वारा अनुभूति नहीं की है न ! यदि मनुष्य तत्परता से साधना करने लगे तो कुछ ही दिनों में उसे अनुभूति होने

लगेगी । जिस प्रकार यदि टेलिफोन का नंबर घुमाना आए और कोड नंबर पता हो तो नन्हें-से डिब्बे के द्वारा आप किसी भी राज्य या देश में संबंध स्थापित कर सकते हो परंतु यदि नंबर घुमाना ही न आता हो या सही नंबर पता ही न हो तो ? गलत नंबर लग जाता है ।

आत्मज्ञानी महापुरुषों का मार्गदर्शन न मिलने पर आप दुन्यावी चीजों में से सुख पाने के लिए कितने ही भटको परंतु सच्चा सुख नहीं मिलेगा । आत्मज्ञानी महापुरुष के दर्शन और सत्संग द्वारा दृढ़ निश्चय करके साधन-भजन किया जाए तो सच्चे सुख की अनुभूति हो जाएगी । उधार धर्म नहीं... 'मौत के बाद स्वर्ग में जाएँगे अथवा बिस्त में जाएँगे' ऐसा नहीं परंतु यहीं बिस्त का बिस्त, स्वर्ग का स्वर्ग जो तुम्हारा अंतर्यामी आत्मदेव है, उसको जानकर परम सुख की अनुभूति करने की कला जान लो ।

असाधक या निगुरों के संपर्क से साधक की साधना क्षीण होती है जबकि साधकों का संपर्क साधक को मददरूप बनता है । इसलिए विरोधी वृत्ति के लोगों के साथ कदापि मेल नहीं रखना चाहिए ।

यह जेट युग है, बैलगाड़ी में बैठकर मुसाफिरी करने का जमाना नहीं है । जैसे पहले अपने दादा-परदादा बैलगाड़ी में जाते थे लेकिन अभी आपको शीघ्र पहुँचाए ऐसा साधन चाहिए क्योंकि समय कम है । ऐसे ही साधना में भी तीव्रता चाहिए और शीघ्र पहुँचा दे ऐसा साधन चाहिए ।

सावधानीपूर्वक आत्मज्ञान के नियमित अभयास से आत्मशांति और आत्मसुख की अनुभूति होने लगती है । शरीर नीरोग हो जाएगा । कर्कश वाणी मिटकर आपकी वाणी मधुर हो जाएगी संकल्प में अनुपम सामर्थ्य आ जाएगा ।

संत महापुरुष के सान्निध्य से, सत्संग से जो भी साधना की विधि सीखने को मिले, उसका अभ्यास दृढ़तापूर्वक नियम से रोज चालू रखो । आपको साधन-भजन की जो चिनगारी मिले उसकी सुरक्षा करो । जैसे, खेत में बीज उगे हों लेकिन उनकी सुरक्षा न की जाये तो बीज मुरझा जाते हैं और यदि उनकी सुरक्षा की जाये तो थोड़े ही समय में वे पौधे होकर फलते हैं । वटवृक्ष के एक छोटे-से बीज में से विशाल वटवृक्ष हो सकता है । ऐसे ही नियमित रूप से साधन-भजन किया जाये और उसकी सुरक्षा की जाए तो छः महीने में अनुभवरूपी मीठे फल भी चखने को मिल सकते हैं । लेकिन साधन-भजन करने में सातत्य होना चाहिए ।

कई लोग दो दिन साधन-भजन करेंगे, नयें-नये नौ दिन नियम से चलेंगे और फिर बीच में छोड़ देंगे अथवा तो दूसरा साधन पकड़ेंगे । इस प्रकार वर्षों बीत जाते हैं फिर भी बेचारे ठनठनपाल ही रह जाते हैं, सच्चे सुख से वंचित ही रह जाते हैं ।

सुख सबकी माँग है । हाँ, तमोगुणी, रजोगुणी और सत्त्वगुणी जीवों का सुख प्राप्त करने का माध्यम जरूर अलग-अलग होता है । जैसे कि तमोगुणी जीव तामसी आहार करके, किसी भी प्रकार के कर्म किये बिना ही आलस्य तथा प्रमाद में ही जीवन बिताते हैं, उनका सुख कीचड़ का सुख है । जैसे, गोबर का कीड़ा गोबर में ही सुख मानता है और नाली का कीड़ा नाली में ही सुख पाता है वैसे ही तामसी स्वभाव का मनुष्य तामसी व्यवहार में ही सुखबुद्धि करता है ।

कई मनुष्य रजोगुणी स्वभाव के होते हैं । वे थोड़ी बहुत प्रवृत्ति करेंगे और देखेंगे कि यदि माल और वाहवाही होती होगी, तो कहेंगे कि 'वाह ! मजा ही मजा है !' यह रजोगुणी सुख है ।

कुछ सात्त्विक मनुष्य होते हैं । वे ध्यान-भजन करते हैं, सेवा और परोपकार करते हैं, सदाचारी पवित्र जीवन बिताते हैं, संतदर्शन-सत्संग से उनका हृदय पुलकित होता है । इसे सात्त्विक सुख कहते हैं ।

परंतु संतों और सत्शास्त्रों का कहना है कि सत्त्वगुणी मनुष्य को भी तब तक सच्चा, शाश्वत् सुख नहीं मिलता, जब तक वह गुणातीत न बने । संत-महापुरुषों का सान्निध्य पाकर ऐसा आत्मानुभव प्राप्त कर लेना चाहिए कि फिर उनका अनुभव अपना अनुभव हो जाय । जब-जब वृत्ति अंतर्मुखी करें तो संतत्व ही केवल शेष रहे ।

दिले तस्वीरे है यार...
जबकि गरदन झुका ली और मुलाकात कर ली ।

जब तक अपने स्वस्वरूप का ज्ञान नहीं होता तब तक मन स्थिर नहीं होता ।

स्वामी विवेकानन्द कहते थे :

''थोड़ी साधना करो परंतु उत्साह और सावधानी के साथ करो । शास्त्र और महापुरुषों की बात को मोक्षप्राप्ति के लिए सुनो, न कि सत्संग में गये और मजा लेकर आ गये ।''

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

'हे पार्थ ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्त से निरन्तर चिंतन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है ।' (भगवद्गीता : ८.८)

आपकी वृत्ति जिस-जिस वस्तु और व्यक्तियों में जाए उस-उस वस्तु और व्यक्ति में एक अनन्य परमात्मा ही विराजमान हैं- ऐसी दृढ़ता से छः महीने लगातार और सावधानी से अभ्यास किया जाय तो कल्याण हो जाता है ।

अभ्यास करनेवाले साधक को आहार-विहार का खयाल रखना चाहिए । अति बहिर्मुख, अति पामर, अति तामसी और अति राजसी लोगों का संपर्क नहीं करना चाहिए । असाधक या निगुरों के संपर्क से साधक की साधना क्षीण होती है जबकि साधकों का संपर्क साधक को मददरूप बनता है । इसलिए विरोधी वृत्ति के लोगों के साथ कदापि मेल नहीं रखना चाहिए । केवल ऐसे ही लोगों के साथ संग करना चाहिए जो आपकी नाई आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हों, आपके जैसे ही विचार के हों, सदाचारी हों और सुशील हों । अन्य के साथ फालतू बैठना भी नहीं चाहिए क्योंकि कुसंग की लालच और उसका प्रभाव बहुत ही घातक होता है । इसीलिए कुसंगियों से सावधान रहकर अपनी साधना की रक्षा करनी चाहिए ।

सावधानीपूर्वक आत्मज्ञान के नियमित अभ्यास से आत्मशांति और आत्मसुख की अनुभूति होने लगती है । प्रथम फायदा यह होगा कि आपका शरीर नीरोग हो जाएगा । कर्कश वाणी मिटकर आपकी वाणी मधुर हो जाएगी । आपके संकल्प में अनुपम सामर्थ्य आ जाएगा । कुटिल स्वभाव दूर होकर मोह, मद, मत्सर, आदि विकारों पर विजय मिल जायेगी । फिर विषय-विकार आप पर हमला नहीं कर सकेंगे । जैसे एक बार आप जेबकतरे को पहचान लो फिर वह आप पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता । मान लो कि आप बस में जा रहे हो । आप जान गये हो कि जेबकतरा कौन है और आप अपनी जेब सँभालने में सावधानी भी रख रहे हो, फिर यदि जेबकतरे का हाथ आपकी जेब पर पड़ता है तो आप तुरंत कहोगे कि : ''क्यों भाईसाहब ! आपको पैसे चाहिए ?''

जेबकतरा अपने को बचाने के लिए गिड़गिड़ाते हुए बोलेगा कि :

''नहीं नहीं, मैं तो मजाक करता था कि आपको पता चलता है कि नहीं । माफ करो, भैया !''

आप चोर पर नजर नहीं रखते हो इसलिए चोर चोरी कर जाता है । इसी प्रकार आप अपने मन पर सतर्क नजर रखने पर आप उस पर विजय पा सकते हो ।

अतः मनुष्य जीवन का अंतिम ध्येय प्राप्त करने के लिए, महासत्य को पाने के लिए अत्यंत व्याकुलता का भाव प्रकट कर देना चाहिए । जिस प्रकार मकान

(शेष पृष्ठ ४३ पर)
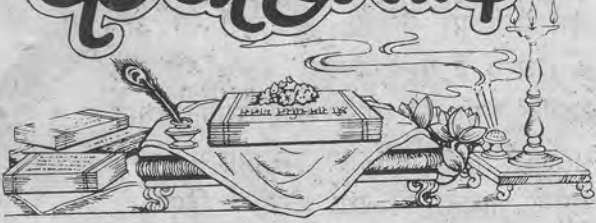
कौरवों का विनाश कब से ?

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

महाभारत काल में कौरवों का पतन कब शुरू होता है ? जब धर्मात्मा विदुर का अपमान होता है तब । विद्वान एवं धर्मात्मा विदुर जब घर छोड़ते हैं तभी से उस घर का सत्यानाश होना शुरू होता है । रामायण काल में जब विभीषण अपना घर छोड़ते हैं तबसे लंका का पतन शुरू होता है ।

जो दूसरे का हक छीनता है उसकी नींद हराम हो जाती है ।

कौरव पक्ष में धर्मात्मा विदुर हैं तो पाण्डव पक्ष में धर्म के विग्रहस्वरूप महाराज युधिष्ठिर हैं । पाण्डव. पक्ष में सब धर्म की बात को मानते हैं । वहाँ धर्म सर्वोपरि है । बड़े भाई युधिष्ठिर की बात सभी मानते हैं जबकि कौरव पक्ष में विदुरजी की बात को नहीं माना गया वरन् दासीपुत्र कहकर तिरस्कृत किया गया इसीलिए कौरवों का पतन हुआ ।

अधर्म के पक्ष में होने के कारण धृतराष्ट्र अत्यंत अशांत रहने लगे । उन्हें नींद नहीं आ रही थी । उन्होंने अपने धर्मात्मा भाई विदुरजी को बुलवाया और पूछा :

''मुझे क्या करना चाहिए ? अब तो मुझे रात को नींद तक नहीं आती ।''

तब विदुरजी ने कहा : ''जो दूसरे का हक छीनता है उसकी नींद हराम हो जाती है । राजन् ! आपके घर साक्षात् कलियुगरूप, अधर्मरूप दुर्योधन आया है । आप उसका पक्ष ले रहे हैं । आपको पाण्डवों को उनका हक लौटा देना चाहिए तो ही आप शांति प्राप्त कर सकेंगे और आपका यश रहेगा । दुर्योधन के चक्कर में आकर आप अपना कर्त्तव्य भूल रहे हैं, भैया !''

जिस समय विदुरजी ने धृतराष्ट्र को सीख दी, उस समय दुर्योधन, दुःशासन और उनके साथी छुपकर यह सुन रहे थे । यह सीख सुनकर वे आ धमके विदुरजी पर और दुर्योधन ने कह दिया : ''आप केवल प्राण लेकर चले जाइये यहाँ से ।''

यहाँ ध्यान देने की जरूरत है कि धर्मात्मा में और भक्त में कुछ अंतर है । धर्मात्मा तो धर्मयुद्ध करता है लेकिन भक्त युद्ध के पचड़े में भी नहीं पड़ता । भगवद्भाव नष्ट हो, वह काम भक्त नहीं चाहता । विदुरजी ने धनुषबाण वहीं रख दिया ताकि दुर्योधन को यह न लगे कि 'विदुरजी पाण्डवों से मिलकर युद्ध करेंगे...'

विदुरजी तीर्थयात्रा करने को चल पड़े, तबसे ही कौरवों के विनाश का आरंभ हो गया और महाभारत के युद्ध में कौरव कुल समुचा नष्ट हो गया । किसीने ठीक ही कहा है :

संत सताये तीनों जाये, तेज बल और वंश ।
ऐड़ा-ऐड़ा कई गया रावण कौरव केरो कंस ॥

❀

सत्संग की महिमा

एक समय की बात है : भगवान विष्णु क्षीरसागर में शेषशैया पर विराजमान थे । इतने में नारदजी वहाँ जा पहुँचे । अपनी निजानंद की मस्ती में मस्त होने के कारण भगवान विष्णु को नारदजी के आगमन का पता न चला । कुछ समय व्यतीत होने पर उनकी दृष्टि नारदजी पर पड़ी और उन्होंने उनसे कुशलक्षेम पूछी ।

नारदजी ने कहा : ''भगवन् ! मैं तो काफी समय से खड़ा हूँ परंतु आपकी आँखें आधी खुली होने पर भी आप मुझे भला क्यों न देख पाए ?''

विष्णुजी : ''नारद ! मैं अपने स्व-स्वरूप में मस्त था ।''

नारदजी : ''स्व-स्वरूप में मस्त रहना यानी क्या ?

विष्णुजी : ''यह रहस्य तुम्हें समझ में नहीं आएगा । स्व-स्वरूप को जानने के लिए सत्संग की आवश्यकता है । 'सत्संग' शब्द कान में पड़ते ही सारे पाप-ताप जलने लगते हैं और स्व का रहस्य मालूम होने लगता है ।''

सत्संग की महिमा क्या है ? यह समझाने के लिए भगवान विष्णु ने कहा :

''नारद ! तुंगभद्रा नदी के किनारे पर एक गाँव है । गाँव के बाहर एक वटवृक्ष है । वहाँ पहुँचने पर तुम्हें एक कीड़ा वटवृक्ष पर चढ़ते हुए नजर आएगा । उसे तुम पूछना कि सत्संग की और संतदर्शन की क्या महिमा है ।''

भगवान को प्रणाम करके नारदजी उस गाँव के बाहर स्थित वटवृक्ष के पास गये । भगवान के कथनानुसार उन्होंने देखा कि एक कीड़ा उस वृक्ष पर चढ़ रहा था । नारदजी ने पूछा :

''सत्संग और संतदर्शन की क्या महिमा है ?''

'सत्संग' शब्द की ध्वनि के आंदोलन लगते ही वह कीड़ा मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

नारदजी ने वापस लौटकर यह बात भगवान विष्णु से कही : ''प्रभो ! मेरा प्रश्न सुनते ही वह कीड़ा वहीं मृत्यु की शरण हो गया ।''

विष्णुजी : ''हाँ... उसी वृक्ष पर एक तोते का जन्म अभी-अभी हुआ है । तुम पुनः वहाँ जाकर उससे सत्संग की महिमा पूछो ।''

नारदजी ने जैसा भगवान ने कहा ऐसा ही किया, लेकिन 'सत्संग की महिमा क्या है ?' ऐसा सुनते ही उस तोते के बच्चे ने अपने प्राण छोड़ दिये ।

नारदजी ने हतप्रभ होते हुए इस घटना से भी भगवान को अगवत कराया तब भगवान विष्णु बोले :

''कोई बात नहीं, नारद ! तुम अब उसी गाँव के बाहर वटवृक्ष के पास स्थित जो ग्वाला का घर है वहाँ जाओ । उसकी गौशाला में कुछ गायें हैं । अभी प्रणाम गाय ने बछड़े को जन्म दिया है । उस बछड़े को तुम अपना प्रश्न सुनाना ।''

''जी प्रभो ।'' कहकर नारदजी वापस उसी गाँव में गये । नारदजी ने बछड़े के कान में अपना प्रश्न किया, लेकिन इस बछड़े का भी वही हाल हुआ जो कीड़े और तोते के बच्चे का हुआ था । बछड़ा भी तुरन्त मर गया ।

नारदजी तो हैरान हो गये कि प्रभु की यह क्या अजीब लीला हो रही है ! उन्होंने भगवान से पुनः प्रार्थना की :

''भगवन् ! आश्चर्य है ! मैं जिसे अपना प्रश्न सुनाता हूँ वह वहीं मर जाता है ! प्रभु ! यह क्या हो रहा है ? कुछ समझ में नहीं आ रहा ।''

भगवान : ''नारद ! तुम देखते जाओ । अब तुम उस देश के राजा के पास जाओ । उसके यहाँ राजकुमार का जन्म हुआ है । उसे कहना कि तुम उसे पुत्रप्राप्ति की बधाई देने आये हो । इस प्रकार तुम उसके पुत्र से मिलना और अपना प्रश्न पूछना, लेकिन एकांत रहे, इस बात का ध्यान रखना ।''

नारदजी तुरंत बोले : ''प्रभु ! मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जो आप मुझे फाँसी पर चढ़वाना चाहते हैं ? मैं उस नवजात शिशु से सत्संग की महिमा पूछूँ और वह राजकुमार की भी कीड़े, तोते और बछड़े जैसी हालत हो जाए तो राजा मुझे जिंदा नहीं छोड़ेगा ।

नारदजी की बातें सुनकर भगवान विष्णु मन्द-मन्द मुस्कुराये और बोले : ''तुम उसकी चिंता न करो । मैं तुम्हें वचन देता हूँ नारद ! उस बाल-राजकुमार को कुछ नहीं होगा । तुम निश्चिंत होकर उससे अपना प्रश्न पूछना । इस बार तुम्हें उत्तर अवश्य मिलेगा ।''

(शेष पृष्ठ २३ पर)

विदुरजी धर्मात्मा भी थे, भागवत भी थे, भगवद्भक्त भी थे । वे तीर्थयात्रा करने को चल पड़े, तबसे ही कौरवों के विनाश का आरंभ हो गया और महाभारत के युद्ध में कौरव कुल समुचा नष्ट हो गया । किसीने ठीक ही कहा है : संत सताए तीनों जाए तेज बल और वंश । ऐड़ा-ऐड़ा कई गया रावण कौरव केरो कंस ।।

बालयोगी मधुसूदन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

उम्र के साथ आत्मज्ञान का कोई संबंध नहीं है। अगर मनुष्य का विवेक-वैराग्य जाग उठे और वह तत्परता से लग पड़े तो छोटी-सी उम्र में भी आत्मज्ञान की परम उपलब्धि कर सकता है। जरूरत है तो बस, दृढ़ निश्चय और अथक पुरुषार्थ की। ऐसे ही एक महापुरुष थे श्री मधुसूदन सरस्वती।

> *उम्र के साथ ज्ञान का कोई संबंध नहीं है। मनुष्य का विवेक - वैराग्य जाग उठे और वह तत्परता से लग पड़े तो छोटी-सी उम्र में भी आत्मज्ञान की परम उपलब्धि कर सकता है।*

मधुसूदन सरस्वती जब बारह वर्ष के थे तब एक बार अपने राजपंडित पिता के साथ नाव में बैठकर राजा के पास गये। उनके पिता ने राजा से कहा :

''हर साल बड़े आग्रह के साथ आप मुझे बुलाते हैं और आप मेरे द्वारा शास्त्रीय वचन, कविता एवं सद्ग्रंथ सुनकर पावन होते हैं, किंतु राजन् ! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। अब मुझसे भी उत्तम कविता मेरा यह बालक आपको सुनाएगा। यह बालक मधुसूदन है तो बारह साल का परंतु उसके हृदय में माँ सरस्वती का वास है। उसकी वाणी शास्त्र-रस से सुसज्ज है।''

> *जब मन में भय एवं चिंता होती है तब बाहर के पदों में रस नहीं आता।*

इस प्रकार पिता ने जब मधुसूदन की प्रशंसा की तब राजा ने कहा :

''आप लोगों को मुसाफिरी की थकान होगी। अतः आराम करें। हम सुबह फिर मिलेंगे।''

दूसरा दिन हुआ लेकिन राजा से राजगुरु की मुलाकात न हुई। तीसरा दिन... चौथा दिन बीता। अंत में मुश्किल से फिर से वही बात राजा के समक्ष छेड़ दी गई। तब राजाज्ञा से राजदरबार में मधुसूदन ने कुछ चौपाइयाँ, श्लोक, काव्य-रचनादि सुनाये। किंतु राजा का मन कहीं ओर ही जगह पर व्यस्त था। राज्य की सीमाएँ किसी और राजा द्वारा खतरे में पड़ी हुई थीं, राजा को उसकी चिंता हो रही थी।

जब मन में भय एवं चिंता होती है तब बाहर के पदों में रस नहीं आता। काफी कुछ सुन लेने के बाद राजा ने ऊपर-ऊपर से कह दिया : ''वाह ! बहुत सुंदर !'' और बिना हृदय के उत्तम पुरस्कार देकर बिदा किया।

राजपंड़ित को भारी दुःख हुआ कि राजा के विशेष आग्रह के वश हम इतने दूर से आये थे, फिर भी राजा ने हमारे ऊपर न कुछ ध्यान दिया, न ही वे खुश हुए।

पिता-पुत्र नाव में बैठकर रवाना हुए। पिता उदासीन-से बैठे थे। इतने में विचारमग्न मधुसूदन ने एकाएक कुछ दृढ़ निश्चय किया और पिता से कहने लगे :

''पिताजी ! मुझे एक आज्ञा दीजिए।''

''कैसी आज्ञा ?''

''पिताजी ! आज से मैं संन्यास लेना चाहता हूँ।''

''अभी तो तू बारह वर्ष का ही है।''

''पिताजी ! एक राजा को रिझाने के लिए हम कितने महीनों से तैयारी कर रहे थे और उन्हें तो हमारी कोई कद्र भी न थी। ऐसे मरणधर्मा मनुष्यों

को रिझाते-रिझाते आपने पूरी जिंदगी बिगाड़ दी । अंत में क्या मिला ? मैं भी आपकी नाईं काव्य-पद सुनाते-सुनाते ऐसे ही राजगुरु बनूँगा और मुझे भी राजगुरु का पद मिलेगा, मान-प्रतिष्ठा मिलेगी। फिर उस प्रतिष्ठा को सँभालने में, अहंकार को पोसने में तथा पत्नी और बाल-बच्चों की देखभाल करने में ही मेरा जीवन खत्म हो जाएगा । जिसने अपने आत्मा को नहीं पहचाना है, ऐसों की खुशामद में ही मेरी आयु नष्ट हो जाएगी । मेरी आयु पूरी हो जाये इसके पहले मैं आपसे संन्यास-दीक्षा की आज्ञा चाहता हूँ ।''

मिट्टी के घड़े का भरोसा होता है कि छः महीने तक रहेगा परंतु ब्रह्माजी के इस घड़े का कोई भरोसा नहीं है । अतः जितना हो सके उतना जल्दी समय का सदुपयोग कर लेना चाहिए ।

''बेटा ! तू अभी छोटा है । थोड़ा अभ्यास करके विद्वान बन, संसार के भोगों को भोग, उसके पश्चात् वृद्धावस्था में संन्यास लेना ।''

''पिताजी ! मैंने आपसे ही शास्त्रों की बात सुनी है कि :

अनित्यानि शरीराणि वैभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

'यह शरीर अनित्य है, धन-वैभव शाश्वत नहीं है और एक-एक दिन करके रोज मृत्यु नजदीक आ रही है । इस नाशवान् शरीर का कोई भरोसा नहीं है इसलिए धर्म का संग्रह कर लेना चाहिए ।'

पिताजी ! मिट्टी के घड़े का भी भरोसा होता है कि छः महीने तक रहेगा परंतु इस ब्रह्माजी के घड़े का कोई भरोसा नहीं है । अतः जितना हो सके उतना जल्दी समय का सदुपयोग कर लेना चाहिए ।''

छोटी-छोटी चीजें इकट्ठी करने के लिए तड़पता है वह बड़ी उम्र का होते हुए भी छोटा है । जो छोटा होते हुए भी बड़े-में-बड़े आत्मदेव को पाने के लिए तड़पता है वह बड़ा हो जाता है ।

''ठीक है, पुत्र ! मैं तो अनुमति देता हूँ किंतु मेरी आज्ञा पर्याप्त नहीं है । तुझ पर तेरी माँ का भी अधिकार है, इसलिए घर चलकर पहले अपनी माँ से अनुमति ले ले ।''

मधुसूदन घर जाकर माता के चरणों में प्रणाम करके बोला :

''माँ ! मैंने आज तक तुमसे कुछ नहीं माँगा लेकिन आज कुछ माँगना चाहता हूँ ।''

''वत्स ! तू जो माँगेगा, वह मिलेगा ।''

''माँ ! मुझे वचन दे ।''

''हाँ पुत्र ! तू जो माँगेगा वह मैं दूँगी, जरूर दूँगी ।''

''माँ ! तुम कल्याणकारिणी हो ! मैं तुमसे और कुछ तो नहीं माँगता, सिर्फ मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दे दो ।''

इतना सुनते ही माँ पर मानो वज्राघात हुआ । आनंद और हर्ष का वातावरण अचानक आक्रंद में बदल गया ।

मधुसूदन आश्वासन देते हैं, शास्त्रों का ज्ञान सुनाते हैं : ''माँ ! तुम कहती थी न कि पुत्र ऐसा होना चाहिए जो अपना और अपने कुल का उद्धार करे । माँ ! मेरा संन्यास लेना कल्याणकारी सिद्ध होगा । माँ ! तुम वचन दे चुकी हो । अचानक पुत्र की मौत हो जाए तब भी माँ दिल पर पत्थर रखकर जी लेती है । कोई पुत्र जवानी में ही आवारा बन जाता है, कोई पुत्र शादी के बाद पत्नी को लेकर माँ-बाप से अलग हो जाता है और कभी पुत्र का जन्म होते ही उसकी मृत्यु हो जाती है तब भी माता अपने मन को मना लेती है । जबकि मैं तो बारह साल तुम्हारे चरणों में रहा हूँ और अब दूर जा भी रहा हूँ तो सत्य को, परमात्मा को पाने के लिए । मेरे पिताजी ने जिंदगीभर राजाओं को रिझाया, लेकिन अंत में क्या ? कभी वे खुश हुए तो कभी नाराज हुए । इससे तो वे अपने जीवनदाता प्रभु को रिझाने में समय-शक्ति का खर्च करते तो आज निहाल हो जाते । इसलिए हे माँ ! तुम मुझे संन्यास लेकर

अपने परमेश्वर को पाने की अनुमति प्रदान कर दो ।''

माँ के पास अब कहने के लिए कुछ बाकी न रहा था, फिर भी वह बोली :

''ठीक है बेटा ! मनुष्य जन्म प्रभु-प्राप्ति के लिए हुआ है । अत: मैं तुम्हारे मार्ग में रुकावट नहीं बनूँगी, परंतु बेटा ! अभी तुम छोटे हो ।''

''जो मनुष्य छोटी-छोटी चीजें इकट्ठी करने के लिए तड़पता है वह बड़ी उम्र का होते हुए भी वास्तव में छोटा है और जो उम्र में छोटा होते हुए भी बड़े-में-बड़े आत्मदेव को पाने के लिए तड़पता है वह फिर छोटा नहीं कहलाता, बड़ा हो जाता है ।''

बाहर के कुसंस्कार का प्रभाव उन पर नहीं पड़ा था । शरीर में ब्रह्मचर्य की शक्ति थी । दृढ़ वैराग्य पनपा हुआ था । अत: सहज ही में ध्यानमग्न होने लगे और उनका भीतरी आनंद और रस प्रकट होने लगा ।

माँ निरुत्तर हो गई और अंत में मधुसूदन को आज्ञा दे ही दी कि :

''जा बेटा ! तेरा कल्याण हो... लेकिन कभी-कभार दर्शन देने जरूर आना ।''

माता-पिता के आशीर्वाद लेकर बालक मधुसूदन संन्यास लेने के लिए घर का त्याग कर निकल पड़ा ।

ताज को स्वप्न आया । एक बालयोगी यमुना किनारे तप कर रहा है । उसको स्पर्श करके जो हवा आती है वह दर्द दूर कर रही है । बालयोगी ने ताज को आशीर्वाद दिये । फिर वह अच्छी हो गई ।

पिता ने सिखाया था कि पहले विद्याभ्यास करके, सार-असार का ज्ञान पाकर फिर किसी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की शरण में जाना । मधुसूदन ने ऐसा ही किया ।

एक बार चलते-चलते मथुरा में आये और वहाँ यमुना के किनारे ध्यानमग्न हो गये । मधुसूदन का चित्त निर्दोष था । बाहर के कुसंस्कार का प्रभाव उस पर नहीं पड़ा था । शरीर में ब्रह्मचर्य की शक्ति थी । दृढ़ वैराग्य पनपा हुआ था । अत: सहज ही में ध्यानमग्न होने लगे और उनका भीतरी आनंद और रस प्रकट होने लगा ।

एक बार अकबर की पत्नी ताज को पेट में दर्द होने लगा । उसने कई इलाज करवाये फिर भी कोई दवाई काम न आयी । एक दिन रात को ताज को स्वप्न आया । उसने देखा कि एक बालयोगी यमुना किनारे तप कर रहा है । उसको स्पर्श करके जो हवा आती है वह दर्द दूर कर रही है । उस बालयोगी ने ताज को आशीर्वाद दिये । फिर वह अच्छी हो गई ।

प्रभातकाल का स्वप्न अक्सर सच्चा होता है । सुबह उठकर ताज ने पतिदेव अकबर को अपने स्वप्ने की बात बतायी और वहाँ जाने के लिए कहा । अकबर भी साधु-संतों के आशीर्वचनों में विश्वास रखता था । अकबर ने अपने मंत्री से बात की तब मंत्री ने कहा :

''महाराज ! पहले हमें गुप्तचर भेजकर जाँच कर लेनी चाहिए कि सचमुच में यमुना किनारे कोई बालयोगी तपश्चर्या कर रहे हैं कि नहीं । यदि कोई होंगे तो आप और बैगमसाहिबा गुप्तवेश में भले जाएये ।''

अकबर ने ऐसा ही किया । गुप्तचर द्वारा जानने को मिला कि वास्तव में यमुना किनारे बारह वर्ष के एक बालयोगी ध्यानस्थ बैठे हैं ।

अकबर और बैगम गप्तवेश में बालयोगी के पास गये । अकबर ने प्रार्थना की :

''महाराज ! हम दीन-दु:खी आपकी शरण में आये हैं । मेरी पत्नी के पेट में बहुत दर्द हो रहा है । बड़े दूर से हम आशा लेकर आपके पास आये हैं ।''

बालयोगी मधुसूदन ने आँखें खोलीं और

बोले : ''जो जगन्नियंता परमात्मा है, जो सबके हृदय में बस रहा है, उसको याद करोगे तो सब दु:ख दूर हो जाएँगे । तुम भी भगवान की कृपा से ठीक हो जाओगी ।''

इतना कहकर थोड़ी मिट्टी उठाकर दे दी और पेट पर लगाने के लिए कहा ।

बालयोगी की दृष्टि से ही आधा दर्द तो दूर हो गया था और आधा दर्द महल पहुँचते ही समाप्त हो गया ।

''महाराज ! ये भेंट स्वीकार करने की कृपा कीजिए । कल हम कपटवेश में आये थे । मैं राजा अकबर और वह मेरी पत्नी ताज थी । ''

दूसरे ही दिन अकबर बादशाह हीरे-जवाहरात एवं सुवर्ण मुद्राएँ लेकर बालयोगी मधुसूदन के पास हाजिर हो गया और बोला :

''महाराज ! ये भेंट स्वीकार करने की कृपा कीजिए। कल हम कपटवेश में आये थे। मैं राजा अकबर और वह मेरी पत्नी ताज थी। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?''

जब मनुष्य परमात्म-ध्यान में मस्त हो जाता है, तब उसे ऐहिक वस्तुओं में रस नहीं रहता । आत्मरस चख लेनेवाले योगी को फिर सोना, हीरा, जवाहरात या इन्द्रिय-भोग-विलास आकर्षित नहीं कर सकते ।

जब मनुष्य परमात्म-ध्यान में मस्त हो जाता है, परब्रह्म परमात्मा में बुद्धि स्थिर हो जाती है तब उसे ऐहिक वस्तुओं में रस नहीं रहता । आत्मरस चख लेनेवाले योगी को फिर सोना, हीरा, जवाहरात या इन्द्रिय-भोग-विलास आकर्षित नहीं कर सकते ।

जिनके चित्त में प्रबल वैराग्य की ज्वाला और परमात्म-प्राप्ति की तड़प थी- ऐसे बारह वर्ष के बालयोगी मधुसूदन ने राजा अकबर को उत्तर दिया :

''मेरा कोई मठ या पंथ नहीं है कि मैं हीरे-जवाहरात सँभालूँ । मुझे जो सँभालना चाहिए वह मुझे सँभालने दो और यदि आपको मेरे प्रति श्रद्धा है और कुछ देना ही चाहते हो तो इन चीजों का उपयोग साधु-संतों की सेवा में करना, धार्मिक लोगों को राज्य की ओर से सुविधा देना । आप इतना करोगे तो मुझे लगेगा कि मेरी सेवा हो गई ।''

मधुसूदन की वाणी सुनकर अकबर बादशाह उनसे और भी अधिक प्रभावित हो गया । उनको प्रणाम करके लौटा एवं उनकी आज्ञा का पालन किया । वे ही मधुसूदन आगे चलकर बड़े महान संत हुए व श्रीमद्भगवद्गीता पर उन्होंने टीका लिखी । वही मधुसूदनी टीकावाली भगवद्गीता अभी भी भारत के लाखों-लाखों घरों में मिलेगी ।

जगत की सत्यता जितनी दृढ़ होती है, वृत्ति जितनी बहिर्मुख होती है और 'मेरे-तेरे' के विचार जितने आते हैं, उतनी शक्ति बिखरती है । उम्र के साथ ज्ञान का कोई संबंध नहीं है । जब बुद्धि परब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाती है तब चित्त में अद्भुत शांति और सामर्थ्य प्रकट होने लगता है । फिर तो जिस पर भी ऐसे महापुरुष की नजर पड़ जाती है वह निहाल हो जाता है । इतना ही नहीं, उनको छूकर जो हवा बहती है, वह भी सुख और शांति की खबरें देने लगती है ।

(पृष्ठ ३७ का शेष)

को आग लगने के अवसर पर आलस्य-प्रमाद, निद्रा-तंद्रा, दिन-रात या ठंडी-गर्मी का भी खयाल नहीं रहता, ऐसे ही आंतरिक वैराग्य की अग्नि प्रज्वलित होने पर इन सब बातों में मनुष्य नहीं फँसता और सावधानी से लग जाता है । जन्म-जन्मांतरों के इकट्ठे हुए पाप-ताप और विरुद्ध संस्काररूपी इंधन को ज्ञानरूपी आग लगा दो जिससे वे भस्मीभूत हो जाएँ और अंत:करण शुद्ध एवं निर्मल हो जाए तथा परम सुख, परम आनंद एवं परम शांति की झलकें आने लगें ।

उठो... जागो... कमर कसो... किसी संत महापुरुष की शरण में पहुँच जाओ... और अभ्यास करके सच्चे सुख को पा लो ।

वर्षा ऋतु में आहार-विहार

वर्षा ऋतु से 'आदानकाल' समाप्त होकर सूर्य 'दक्षिणायन' हो जाता है और 'विसर्गकाल' शुरू हो जाता है । इन दिनों में हमारी जठराग्नि अत्यंत मंद हो जाती है । वर्षाकाल में मुख्यरूप से वात दोष कुपित रहता है । अतः इस ऋतु में खान-पान तथा रहन-सहन पर ध्यान देना अत्यंत जरूरी हो जाता है ।

गर्मी के दिनों में मनुष्य की पाचक अग्नि मंद हो जाती है । वर्षा ऋतु में यह और भी मंद हो जाती है । फलस्वरूप अजीर्ण, अपच, मंदाग्नि, उदरविकार आदि अधिक होते हैं ।

आहार : इन दिनों में देर से पचनेवाला आहार न लें । मंदाग्नि के कारण सुपाच्य और सादे खाद्य पदार्थों का सेवन करना ही उचित है । बासे, रूखे और उष्ण प्रकृति के पदार्थों का सेवन न करें । इस ऋतु में पुराना जौ, गेहूँ, साठी चावल का सेवन विशेष लाभप्रद है । वर्षा ऋतु में भोजन बनाते समय आहार में थोड़ा-सा मधु (शहद) मिला देने से मंदाग्नि दूर होती है व भूख खुलकर लगती है । अल्प मात्रा में मधु के नियमित सेवन से अजीर्ण, थकान, वायुजन्य रोगों से भी बचाव होता है ।

इन दिनों में गाय-भैंस के कच्ची-घास खाने से उनका दूध दूषित रहता है, अतः श्रावण मास में दूध और भादों में छाछ का सेवन करना एवं श्रावण मास में हरे पत्तेवाली सब्जियों का सेवन करना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक माना गया है ।

तेलों में तिल के तेल का सेवन करना उत्तम है । यह वात रोगों का शमन करता है ।

वर्षा ऋतु में उदर-रोग अधिक होते हैं, अतः भोजन में अदरक व नींबू का प्रयोग प्रतिदिन करना चाहिये । नींबू वर्षा ऋतु में होनेवाली बीमारियों में बहुत ही लाभदायक है ।

इस ऋतु में फलों में आम तथा जामुन सर्वोत्तम माने गये हैं । आम आँतों को शक्तिशाली बनाता है । चूसकर खाया हुआ आम पचने में हल्का तथा वायु व पित्तविकारों का शमन करता है । जामुन दीपन, पाचन तथा अनेक उदर-रोगों में लाभकारी है ।

वर्षाकाल के अन्तिम दिनों में व शरद ऋतु का प्रारंभ होने से पहले ही तेज धूप पड़ने लगती है और संचित पित्त कुपित होने लगता है । अतः इन दिनों में पित्तवर्द्धक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये ।

इन दिनों में पानी गन्दा व जीवाणुओं से युक्त होने के कारण अनेक रोग पैदा करता है । अतः इस ऋतु में पानी उबालकर पीना चाहिये या पानी में फिटकरी का टुकड़ा घुमाएँ जिससे गन्दगी नीचे बैठ जाएगी ।

विहार : इन दिनों में मच्छरों के काटने पर उत्पन्न मलेरिया आदि रोगों से बचने के लिये मच्छरदानी लगाकर सोयें । चर्मरोग से बचने के लिये शरीर की साफ-सफाई का भी ध्यान रखें । अशुद्ध व दूषित जल का सेवन करने से चर्मरोग, पीलिया रोग, हैजा, अतिसार जैसे रोग हो जाते हैं ।

दिन में सोना, नदियों में स्नान करना व बारिश में भीगना हानिकारक होता है ।

वर्षाकाल में रसायन के रूप में बड़ी हरड़ का चूर्ण व चुटकीभर सेन्धा नमक मिलाकर ताजा जल सेवन करना चाहिये । वर्षाकाल समाप्त होने पर शरद ऋतु में बड़ी हरड़ के चूर्ण के साथ समान मात्रा में शक्कर का प्रयोग करें ।

जामुन

जामुन दीपक, पाचक, स्तंभक तथा वर्षा ऋतु में अनेक उदर-रोगों में उपयोगी है । जामुन में लौह-तत्त्व पर्याप्त मात्रा में होता है अतः पीलिया के रोगियों के लिये जामुन का सेवन हितकारी है ।

जामुन खाने से रक्त शुद्ध तथा लालिमायुक्त बनता है । जामुन अतिसार, पेचिश, संग्रहणी, यकृत के रोगों और रक्तजन्य विकारों को दूर करता है । मधुमेह (डायबिटीज) के रोगियों के लिये जामुन के बीज का चूर्ण सर्वोत्तम है ।

मधुमेह : मधुमेह के रोगी को नित्य जामुन खाना चाहिये । अच्छे पके जामुन सुखाकर, बारीक कूटकर बनाया चूर्ण प्रतिदिन १-१ चम्मच सुबह-शाम पानी के साथ सेवन करने से मधुमेह में लाभ होता है ।

प्रदररोग : जामुन के वृक्ष की छाल का काढ़ा शहद (मधु) मिलाकर दिन में दो बार कुछ दिन तक सेवन करने से स्त्रियों

का प्रदर रोग मिटता है ।

मुहाँसे : जामुन के बीज को पानी में घिसकर मुँह पर लगाने से मुहाँसे मिटते हैं ।

आवाज बैठना : जामुन की गुठलियों को पीसकर शहद में मिलाकर गोलियाँ बना लें । दो-दो गोली नित्य चार बार चूसें । इससे बैठा गला खुल जाता है । आवाज का भारीपन ठीक हो जाता है । अधिक बोलने-गानेवालों के लिये वह विशेष चमत्कारी योग है ।

स्वप्नदोष : चार-पाँच ग्राम जामुन की गुठली का चूर्ण सुबह शाम पानी के साथ लेने से स्वप्नदोष ठीक होता है ।

दस्त : कैसे भी तेज दस्त हों, जामुन के पेड़ की पत्तियाँ (न ज्यादा मोटी न ज्यादा मुलायम) लेकर पीस लें । उसमें जरा-सा सेंधव नमक मिलाकर उसकी गोली बना लें । एक-एक गोली सुबह-शाम पानी के साथ लेने से दस्त बन्द हो जाते हैं ।

पथरी : जामुन की गुठली का चूर्ण दही के साथ सेवन करने से पथरी में लाभ होता है ।

दीर्घ काल तक जामुन खाने से पेट में गया बाल या लोहा पिघल जाता है ।

जामुन-वृक्ष की छाल के काढे के गरारे करने से गले की सूजन में फायदा होता है व दाँतों के मसूढ़ों की सूजन मिटती है व हिलते दाँत मजबूत होते हैं ।

विशेष : जामुन सदा भोजन के बाद ही खाना चाहिये । भूखे पेट जामुन बिल्कुल न खायें । जामुन खाने के तत्काल बाद दूध का सेवन न करें । जामुन वातदोष करनेवाले हैं अत: वायुप्रकृति वालों तथा वातरोग से पीड़ित व्यक्तियों को इसका सेवन नहीं करना चाहिये । जिनके शरीर पर सूजन आयी हो उन रोगियों को, उल्टी के रोगियों को, प्रसूति से उठी स्त्रियों को और दीर्घ कालीन उपवास करनेवाले व्यक्तियों को इनका सेवन नहीं करना चाहिए । नमक छिड़ककर ही जामुन खायें । अधिक जामुन का सेवन करने पर छाछ में नमक डालकर पियें । जामुन मधुमेह, पथरी, लीवर, तिल्ली और रक्त की अशुद्धि को दूर करते हैं ।

पुदीना

पुदीने का उपयोग अधिकांशत: चटनी या मसाले के रूप में किया जाता है । यह अपच को मिटाता है ।

पुदीना रुचिकर, वायु व कफ का नाश करनेवाला है । यह खाँसी, अजीर्ण, अग्निमांद्य, संग्रहणी, अतिसार, हैजा, जीर्णज्वर और कृमि का नाशक है । यह पाचनशक्ति बढ़ाता है व उल्टी में फायदा करता है ।

पुदीना, तुलसी, कालीमिर्च, अदरक आदि का काढ़ा पीने से वायु दूर होता है व भूख खुलकर लगती है ।

इसका ताजा रस कफ, सर्दी में लाभप्रद है ।

पुदीने का ताजा रस शहद के साथ मिलाकर, दो-तीन घंटे के अंतराल से देते रहने से न्यूमोनिया से होनेवाले अनेक विकारों की रोक-थाम होती है और ज्वर शीघ्रता से मिट जाता है ।

पुदीने का रस पीने से खाँसी, उल्टी, अतिसार, हैजे में लाभ होता है, वायु व कृमि का नाश होता है ।

दाद-खाज पर पुदीने का रस लगाने से लाभ होता है । बिच्छू के काटने पर इसका रस पीने से व पत्तों का लेप करने से बिच्छू के काटने से होनेवाला कष्ट दूर होता है ।

हरे पुदीने की चटनी पीसकर चेहरे पर सोते समय लेप करने से चेहरे के मुहाँसे, फुन्सियाँ समाप्त हो जाएँगी ।

हिचकी बन्द न हो रही हो तो पुदीने के पत्ते या नींबू चूसें ।

प्रात:काल एक गिलास पानी में २०-२५ ग्राम पुदीने का रस व २०-२५ ग्राम शहद मिलाकर पीने से गैस की बीमारी में विशेष लाभ होता है ।

सूखा पुदीना व मिश्री समान मात्रा में मिलाकर दो चम्मच फंकी लेकर ऊपर से पानी पियो । इससे पैर-दर्द ठीक होता है ।

विशेष : पुदीने में विटामिन ए अधिक मात्रा में पाया जाता है । इसमें जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाले तत्त्व अधिक मात्रा में हैं । पुदीने के सेवन से भूख खुलकर लगती है ।

टमाटर

('ऋषि प्रसाद' अंक : ५२ के शरीर-स्वास्थ्य कॉलम में 'टमाटर' का शेष भाग)

टमाटर उत्तम वायुनाशक है ।

पके टमाटर के रस में पुदीना, अदरक, धनिया व सेंधव नमक मिलाकर उबालकर बनाई चटनी के सेवन से भोजन में रुचि उत्पन्न होती है ।

पके टमाटर के ताजा रस में पानी व थोड़ा शहद मिलाकर पीने से रक्तविकार मिटता है ।

विशेष : टमाटर बहुत ही गुणकारी है लेकिन पथरी, सूजन, संधिवात, आमवात और अम्लपित्त के रोगियों के लिये अनुकूल नहीं है । अत: इन्हें टमाटर का सेवन नहीं करना चाहिए ।

जिन्हें शीत पित्त की शिकायत हो, जिनके शरीर में गर्मी अधिक हो, जठर, आँतों या गर्भाशय में उपदंश हो, जिन्हें दस्त लगे हों, जिन लोगों को खटाई अनुकूल न हो वे टमाटर का सेवन न करें । पके टमाटर में विटामिन ए, बी, सी काफी मात्रा में होते हैं ।

काम की बातें

पादपश्चिमोत्तानासन पेट का मोटापा दूर करता है ।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

❀ **मंत्रजप करें :** तुच्छ ओछे लोगों की संगत से मन भी तुच्छ और विकारी बन जाता है । मंत्रजप करने से मन के चारों ओर एक विशेष प्रकार का आभामंडल तैयार हो जाता है । इस आभामंडल के कारण अपने मन पर आक्रमण करनेवाले तुच्छ लोगों के तुच्छ और कुत्सित आंदोलनों से अपना रक्षण हो जाता है । तत्पश्चात् अपना मन पतित विचारों और पतित कार्यों की ओर आकर्षित नहीं होता । उत्थान करानेवाले सत्कार्यों की ओर ही यह सतत गतिमान रहेगा । अतः प्रत्येक दिन नियमपूर्वक मंत्रजप करते रहकर मन को सत्त्वगुणप्रधान बनाते रहिये । चलते-फिरते भी मंत्र का आवर्तन करते रहें ।

❀ मिथ्या में सत्य को जान लेना, नश्वर में शाश्वत को खोज लेना, आत्मा को पहचान लेना तथा आत्मामय होकर जीना यही विवेक है । इसके अतिरिक्त अन्य सब मजदूरी है ।

❀ **सत्संग का प्रभाव रक्त पर :** ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में डिलाबार प्रयोगशाला में बार-बार एक प्रयोग किया गया कि आपके अपने विचारों का प्रभाव तो आपके रक्त पर पड़ता ही है परन्तु आपके विषय में शुभ अथवा अशुभ विचार करनेवाले अन्य लोगों का प्रभाव आपके रक्त पर कैसा पड़ता है और आपके अन्दर कैसे परिवर्तन होते हैं । वैज्ञानिकों ने अपने दस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि : आपके लिये जिनके हृदय में मंगल भावना भरी हो, जो आपका उत्थान चाहते हों, ऐसे व्यक्ति के संग में जब आप रहते हैं तब आपके प्रत्येक घन मि.मी. रक्त में स्थित श्वेतकणों में १५०० का वर्धन एकदम हो जाता है । इसके विपरीत आप जब किसी द्वेषपूर्ण अथवा दुष्ट विचारोंवाले व्यक्ति के पास जाते हो तब प्रत्येक घन मि.मी. रक्त में १६०० श्वेतकण तत्काल घट जाते हैं ।

जीवविज्ञान कहता है कि रक्त के श्वेतकण ही हमें रोगों से बचाते हैं, अपने आरोग्य की रक्षा करते हैं ।

❀ **स्नान :** स्नान करते समय पहले सिर भिगोना चाहिये, फिर पैर । पहले पैर गीले नहीं करने चाहिये । इससे शरीर की गर्मी ऊपर की ओर चढ़ती है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती है । पाँच प्रकार के स्नान होते हैं :

(१) **ब्रह्म-स्नान :** ब्रह्म-परमात्मा का चिंतन करके 'जल ब्रह्म... थल ब्रह्म... नहानेवाला ब्रह्म...' ऐसा चिंतन करके ब्राह्ममुहूर्त में नहाना, इसे ब्रह्म-स्नान कहते हैं ।

(२) **देव-स्नान :** देवनदियों में नहाना या देवनदियों का स्मरण करके सूर्योदय से पूर्व नहाना यह देव-स्नान है ।

(३) **ऋषि-स्नान :** आकाश में तारे दिखते हों और नहा लें यह ऋषि-स्नान है । ऋषि-स्नान करनेवाले की बुद्धि बड़ी तेजस्वी होती है ।

(४) **मानव-स्नान :** सूर्योदय के पूर्व स्नान करना यह मानव-स्नान है ।

(५) **दानव-स्नान :** सूर्योदय के पश्चात् चाय पीकर, नास्ता करके आठ-नौ बजे नहाना यह दानव-स्नान है ।

हमेशा ऋषि-स्नान करने का ही प्रयास करना चाहिये ।

❀

जो वासना से है बँधा, सो मूढ़ बँधन युक्त है ।
निर्वासना जो हो गया, सो धीर योगी मुक्त है ॥
भव-वासना है बाँधती, शिव-वासना है छोड़ती ।
सब बँधनों को तोड़कर, शिव शांति से है जोड़ती ॥

(पृष्ठ ४५ का शेष)

मयूरासन जठराग्नि प्रदीप्त करता है । सर्वांगासन हर प्रकार से लाभप्रद है ।

प्रातः उठने पर जो स्वर चलता हो वही हाथ मुँह पर फिराकर (रखकर) तथा वही पैर जमीन (पृथ्वी) पर रखकर बिस्तर त्यागने से मनोकामना सिद्ध होती है ।

प्रतिदिन भोजन करने के बाद सिर में कंघी करने से सिर की पीड़ा दूर हो जाती है ।

रास्ता चलने या मेहनत का काम करने के बाद दाहिने करवट सोने से थकान दूर हो जाती है ।

वर्षा में त्वचा-रोग : टमाटर के रस का सेवन करें व नमक की मात्रा कम कर दें । गाय का घी शरीर पर मालिश करने से त्वचा रोगों में विशेष लाभ होता है । कालीमिर्च का चूर्ण घी के साथ चाटने से एवं घी में कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर लेप करने से लाल चकत्ते (शीतपित्त) ठीक हो जाते हैं ।

दादागुरु के श्रीविग्रह के दर्शन

पूज्य बापू !

आपकी महिमा को मैं किन शब्दों में सजाऊँ, यह मैं आज मारे हर्ष के समझ नहीं पा रहा हूँ। आपके सत्संग का एक-एक शब्द मानो संतप्त हृदयों के लिये पवित्र मलहम है । लाल किले के मैदान में अप्रैल '९६ में जब आपका प्रथम बार सत्संग सुना तो मानो मेरे हृदयरूपी बगिया में सत्संग, साधना और सेवा के सुमन महक उठे जिनकी तरोताजा सुरभि से मैं आज भी महक रहा हूँ ।

वैसे तो ईश्वरकृपा से मुझे घर बैठे कितने ही संतों के दर्शन-सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ मगर मुझे 'सद्गुरु' की प्राप्ति नहीं हुई । मैं न जाने अपने किन कर्मों की मार से आपकी मंत्रदीक्षा से अछूता रहा ? इसका अफसोस आज भी मेरी आँखों में अश्रु के रूप में मौजूद है लेकिन फिर भी एकलव्य की कथा का अनुकरण कर मैं आपको अपना सद्गुरु मानता हूँ। मैं आपकी इस पत्रिका का नियमित अध्ययन-मनन करता हूँ क्योंकि उसमें बहुत-सी ऐसी बातें सत्संग के जरिए मिलती हैं जो अद्वितीय हैं । एक दिन मैं पत्रिका का सितम्बर '९६ का अंक पढ़ रहा था, जिस पर कई आत्मवेत्ताओं के चित्र थे । इनमें दादागुरु परमादरणीय लीलाशाहजी बापू भी विराजमान थे । पत्रिका पढ़ते-पढ़ते दैवयोग से यकायक मेरा ध्यान आसमान की ओर गया । मैं देखता हूँ तो मेरी आँखों के समक्ष लीलाशाहजी बापू दर्शन दे रहे हैं। यह देख मैं सुधबुध खो बैठा और बस, 'वंदनास्वरूप गुरु महाराज की जय हो...' पुकारता रहा । मेरी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे । मेरी श्रद्धा, भक्ति और आनंद मानो आज परम पिता परमात्मा के लाड़ले संतश्री के दर्शन से पुरस्कृत हो गये । न केवल उस दिन वरन् आज... और अभी भी मुझे संतश्री के उसी मनोहारी छबि में दर्शन होते हैं ।

मुझे लगता है कि इस जीवन में मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया । आपका सत्संग और संतश्री के दर्शन ने मानो मुझे सबसे सौभाग्यशाली पुरुष बना दिया । गुरुदेव ! बस, आपकी कृपादृष्टि बनी रहे...

- सी. बी. मेहरा

सी-८/३० यमुना विहार, नई दिल्ली ।

भेंट रसीद बुक

गुरुपूर्णिमा के शुभ अवसर पर साधक भाई-बहनों के लिए खुशखबरी : अपने मित्रों, सगे-सम्बन्धी, पड़ौसी व अन्यों में ऋषियों का प्रसाद बाँटकर स्वयं व अन्यों को सुखी, स्वस्थ व सम्मानित जीवन जीने की राह पर अग्रसर करें । कार्यालयों, वाचनालयों, धार्मिक स्थलों, अस्पतालों, सार्वजनिक स्थलों में भी 'ऋषि प्रसाद' बाँटकर ईश्वरीय दैवी कार्य में सहभागी बनें । शादी, जन्मदिवस, त्यौहार, महत्त्वपूर्ण दिवस आदि पर 'ऋषि प्रसाद' की सदस्यता भेंटस्वरूप देकर स्वयं व अन्यों की आध्यात्मिक उन्नति में सहायक बनें । इस हेतु भेंट रसीद बुकें बनायी गई हैं ।

ये रसीद बुकें आप 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय अमदावाद से 'ऋषि प्रसाद' के नाम से डी. डी. मनीऑर्डर भेजकर प्राप्त कर सकते हैं ।

आजीवन सदस्यता रसीद बुक : Rs. 5000/- (10 सदस्य)
वार्षिक सदस्यता रसीद बुक : Rs. 1200/- (25 सदस्य)

पता : 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-380005, फोन : 7486310, 7486702.

'ऋषि प्रसाद' के पुराने अंक जिनमें उपयोगी सत्संग और शरीर स्वास्थ्य के बारे में जानकारी है, संस्था में उपलब्ध हैं । हमारे नये सदस्य, साधक इन जीवनोपयोगी जानकारी से वंचित न रह जायें इस बात का ध्यान रखते हुए नये सदस्यों को बारह प्रतियों में से एक पुराने अंक की प्रति दी जाएगी ।

सदस्यों से महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य ५७ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई तक अपना नया पता भिजवा दें ।

संस्था समाचार

सहारनपुर : दिनांक : १७ की शाम व १८ जून '९७ की सुबह, इन दो सत्रों में सहारनपुर व आसपास के गाँव व शहरों से आये हुए हजारों-हजारों श्रद्धालुजनों ने राष्ट्रसंत पूज्य बापूजी की अमृतवाणी का लाभ लिया । दिनांक : १८ जून की सुबह पू. बापूजी ने सत्संग स्थल पर बने हुए 'संत आसारामजी सत्संग भवन' का उद्घाटन किया । सत्संग-समाप्ति के बाद पू. बापूजी मुजफ्फरनगर के लिये प्रस्थान कर गये ।

मुजफ्फरनगर : यहाँ राजकीय इन्टर कॉलेज के मैदान में दिनांक : १९ से २२ जून '९७ तक दिव्य सत्संग समारोह का आयोजन हुआ जिसमें ब्रह्मनिष्ठ संत पू. बापूजी की अमृतवाणी का रसपान करने उत्तर प्रदेश के कोने-कोने व देश के अन्य प्रांतों से विशाल भक्त-समुदाय उमड़ पड़ा । सत्संग-शुभारम्भ के पहले दिन तक भीषण गर्मी के बाद सत्संग के प्रथम दिवस रिमझिम फुहारों के ठंडे और सुहाने हो गये मौसम के बीच विशाल पंडाल में यह कथा प्रारम्भ हुई ।

संतशिरोमणि ने श्रद्धालुओं को संबोधित करते हुए कहा : **''पशुओं को अंकुश में रखा जाता है । ऐसे ही अपने मन को अंकुश में रखें नहीं तो असंतुलित मनवाले नर-पिशाच समाज में अव्यवस्था कर देंगे ।''**

पूज्य बापूजी ने कहा : **''समाज में सज्जनों को संगठित होना चाहिए ।''** उन्होंने कहा : **''सभी धर्मवाले सिर्फ बकरे की बलि चढ़ाते हैं, लेकिन शेर और चित्ते की बलि कोई नहीं चढ़ाता । कमज़ोर तथा दुर्बल मन एवं बुद्धिवालों को ही प्रताड़ित किया जाता है ।''**

दिनांक : २० जून को देश के कोने-कोने से हजारों पूनम व्रतधारियों ने पूज्य बापूजी का दर्शन व सत्संग-श्रवण करके ही अन्न-जल ग्रहण किया ।

दिनांक : २१ जून को विद्यार्थियों के लिये आयोजित विशेष सत्र में विभिन्न स्कूलों से आये हुए छात्र-छात्राओं को संबोधित करते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''विद्यार्थी जीवन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसीमें भविष्य की आधारशिला रखी जाती है ।''**

सत्संग शुभारम्भ के पूर्व मेरठ पुलिस क्षेत्र के उपमहानिरीक्षक (I. G.) डॉ. विक्रमसिंह, पुलिस अधीक्षक विजयकुमार व शहर के गणमान्य नागरिकों ने माल्यार्पण कर पूज्य बापूजी का स्वागत किया ।

पू. बापू के आगामी सत्संग कार्यक्रम

गुरुपूर्णिमा महोत्सव
इन्दौर, दिल्ली और अमदावाद में

(अ) इन्दौर में : १६ और १७ जुलाई १९९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, खंडवा रोड़, बिलावली तालाब के पास, इन्दौर । फोन : ४७८०३१, ६३०६८. **(ब) दिल्ली में :** १८ जुलाई १९९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, वंदे मातरम् रोड़, रवीन्द्र रंगशाला के सामने, न्यू दिल्ली-६०. फोन : ५७२९३३८, ५७६४१६१. **(क) अमदावाद में :** २० जुलाई १९९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५. फोन : ७४८६३१०, ७४८६७०२.

REGISTERED WITH R.N.I. UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST W/O PRE-PAYMENT : AHMEDABAD PSO LICENCE NO. 207
Regd. No: GAMC/1132, BOMBAY BYCULLA PSO LICENCE NO. 1 Regd. No. MH/MNV-01

दिल्ली से अहमदाबाद तक गुरूपूनम दर्शन के लिए निकली विशाल पदयात्रा रैली को संतदर्शन-महिमा समझाते हुए दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा।

श्री यो.वे.से. समिति (आगरा) द्वारा श्री मदयानन्द अनाथालय में बाल भण्डारा, सत्साहित्य वितरण व सत्संग कार्यक्रम।

पूज्यश्री के ५६ वें जन्मदिवस पर हरियाणा के शिक्षामंत्री श्री राम विलास शर्मा ने दीप प्रज्वलित कर तेजस्वी छात्र-छात्राओं को पुस्तकों के सेट भेंट किए।

केनेडा में पूज्यश्री का

५६वाँ जन्मोत्सव मनाते धनभागी हो रहे हैं केनेडा के भक्त।